# मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ

## (नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम के विशेष संदर्भ में)

MARATHI SANTON KI DAKKHINI RACHNAYEN

(NAMDEV, GONDA, EKNATH AUR TUKARAM KE VISHESH SANDARBHA MEIN)

## DAKKHINI WORKS OF MARATHI SANTS

**(WITH SPECIAL REFERENCE TO NAMDEV, GONDA, EKNATH AND TUKARAM)**

**एम. फिल. उपाधि के लिए प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध**


**शोध-निर्देशक**

डॉ. रमण प्रसाद सिन्हा

**शोधार्थी**

राज कुमार

**भारतीय भाषा केन्द्र**

**भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान**

**जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय**

**नई दिल्ली - 110067**


**2018**

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Center of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली – 110067, भारत NEW DELHI – 110067, INDIA

Date : 20/07/2018

## DECLARATION

I hereby declare that the research work done in this M.Phil. Dissertation entitled **MARATHI SANTON KI DAKKHINI RACHNAYEN (NAMDEV, GONDA, EKNATH AUR TUKARAM KE VISHESH SANDARBHA MEIN) [DAKKHINI WORKS OF MARATHI SANTS (WITH SPECIAL REFERENCE TO NAMDEV, GONDA, EKNATH AND TUKARAM)]** by me is the original research work and it has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

RAJ KUMAR
RESEARCH SCHOLAR

DR. RAMAN PRASAD SINHA
SUPERVISOR
CIL/SLL&CS/JNU

PROF. GOBIND PRASAD
CHAIRPERSON
CIL/SLL&CS/JNU

Tel. : (91-011) 26741557, 26742676; Extn. : 4217, (D) 26704217; Telefax : (91-01) 26704217
Email : chair_cil@mail.jnu.ac.in, jnucil@gmail.com

# अनुक्रम


| | |
|---|---|
| **भूमिका** | **i-iii** |
| **पहला अध्याय** | **1-54** |
| मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : एक सर्वेक्षण | |
| **दूसरा अध्याय** | **55-122** |
| मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : अंतर्वस्तु | |
| **तीसरा अध्याय** | **123-150** |
| मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : शिल्प | |
| **निष्कर्ष** | **151-154** |
| **ग्रंथ-सूची** | **155-161** |


**********

# भूमिका

आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास के संदर्भ में यहाँ की बोलियों में रचे गए साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता से हम सभी परिचित हैं । आज इन बोलियों का समृद्ध साहित्य हमारे साहित्यिक विरासत का आधार स्तंभ बन गया है । क्या दक्खिनी साहित्य के माध्यम से खड़ीबोली के विकास-क्रम का पता चल सकता है ? हिन्दी भाषा-साहित्य के वर्तमान स्वरूप के क्रमिक विकास का सही ज्ञान हो, यह दक्खिनी साहित्य की विकास-यात्रा के साथ उसकी भाषिक बुनावट को समझे बिना संभव नहीं हो सकता । हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि इस शोध प्रबंध में दक्खिनी साहित्य के परिप्रेक्ष्य के एक अंश यानी 'मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ' पर ही विशेष आग्रह है किन्तु हम दक्खिनी साहित्य की बृहत्तर भूमिका को भुला नहीं सकते । इस शोध प्रबंध में दक्खिनी में साहित्य रचना के पीछे के कारकों की पहचान की गई है । आज हिन्दुस्तानी भाषा-साहित्य पर विचार करते समय इस्लाम के भारत आगमन के उपरांत उसके विकास-क्रम को कैसे देखें ? यह दक्खिनी के माध्यम से सोदाहरण समझा जा सकता है । सवाल यह है कि इस भाषायी विविधता के बावज़ूद देश की साहित्यिक प्राणधारा क्या है ? क्या कारण है कि बोलियों में रचित साहित्य की धारा में जनजागृति तीव्रतर है ? आख़िर मध्यकालीन श्रमजीवी संत समाज ने लोक बोलियों को ही अपनी रचना का माध्यम क्यों चुना है ? क्यों सूफ़ी संतों की वाणी का माध्यम बनने के साथ राजदरबारों में भी रचनात्मकता का संचार करती हुई वहाँ की राजभाषा के रूप में दक्खिनी सुशोभित होती है ? इस शोध प्रबंध में इन्हीं सवालों के सापेक्ष दक्खिनी साहित्य में मराठी संतों के प्रादुर्भाव को समझने के साथ साथ उनकी दक्खिनी रचनाओं के अध्ययन की कोशिश की गई है ।

दक्खिनी से सम्बद्ध उठती जिज्ञासाओं को इस शोध प्रबंध में मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं पर विचार करते हुए सहजता से जाना जा सकता है । भाषा, लिपि, शब्द-भण्डार और सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि कारकों के साथ एक ऐसे समय में जब बदलते भारत के दावों के

बीच लोक भाषाओं का महत्त्व संकटग्रस्त होता जान पड़ रहा है, वैश्वीकरण का प्रभाव लोक संपदा पर अपनी पकड़ मज़बूत कर रहा है, दक्खिनी का अध्ययन उम्मीदों से भरा है।

मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ मध्यकालीन चेतना के साथ दक्खिनी साहित्य के जड़ों से गहरे में सम्बद्ध दिखाई देती है। फिर भी संतों की देसी आधुनिकता की बात को हम नकार नहीं सकते। यह विचारणीय है कि नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम ने दक्खिनी रचनाओं में अपने तत्कालीन समाज की रूढ़ियों को तोड़ने का काम किया है। चाहे वो भाषा के स्तर पर हो या काव्य विषय की सामाजिकता के रूप में, इन मराठी संतों का व्यक्तित्व फक्कड़ स्वभाव वाला है जो मध्यकालीन समाज का विश्लेषण करने की माँग की ओर भी ध्यान दिलाता है। इस रूप में संत साहित्य आने वाले समय में हमारे महत्त्वपूर्ण बदलावों का आधार बन सकता है।

भारत आधुनिक होकर भी मध्यकालीन रूढ़ियों और आस्थाओं को छोड़ नहीं सकता यह सर्वविदित है। इस शोध प्रबंध के लिखे जाने के दौरान ही मध्यकालीन रूढ़ि और आस्था आज इस देश के कुछ समुदायों में चरम पर पहुँची हुई है। हम ऐसे समय में आशा कर सकते हैं कि संत साहित्य का मानवतावादी पक्ष लोगों की नज़र में आए। जिस लोकजागरण को मध्यकाल में रची बोलियों के माध्यम से हम जान पाते हैं उसकी संपदा को समृद्ध करना या बचाए रखना आज संघर्ष भरा है। सीधे सीधे अपनी बात कह देने का जो साहसिक स्वर इन संतों में है आज उस प्रवृत्ति पर आघात हुआ है। इस शोध प्रबंध का इस रूप में तनिक भी योगदान रहा तो इसका लिखा जाना सार्थक है।

यह शोध प्रबंध तीन अध्यायों में बँटा हुआ है। पहला अध्याय दक्खिनी भाषा-साहित्य के प्रादुर्भाव के कारकों के साथ मराठी संत नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं के सर्वेक्षण से सम्बद्ध है, जिसके माध्यम से मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं के कुछ मुख्य आधार ग्रन्थों

की पहचान की गई है। बाद के अध्याय नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं पर केन्द्रित हैं। जहाँ दूसरे अध्याय में इन मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु की चर्चा है वहीं तीसरा अध्याय इनकी दक्खिनी रचनाओं के शिल्प पर आधारित है। इस शोध प्रबंध में आधार ग्रंथों से मराठी संतों की उन्हीं दक्खिनी रचनाओं को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो ज्यादा साफ़गोई से दक्खिनी भाषा-साहित्य के विभिन्न पहलुओं को सामने लाती हैं।

इस शोध के पूरा होने के लिए मैं आभारी हूँ अपने शोध निर्देशक रमण प्रसाद सिन्हा का जिन्होंने मुझे इस विषय पर काम करने की सलाह दी और समय समय पर मार्गदर्शन के साथ विषय की समझ विकसित होने तक मेरे प्रति अपना सहयोग बनाए रखा। पिता जिनके सहयोग की वजह से मैं अपनी शिक्षा के इस मुक़ाम पर हूँ... उनके, माँ, बहन और भाई के प्यार ने शोध प्रबंध लिखने के समय मेरा हौसला बनाए रखा। अपने परिवार के नए सदस्य के रूप में अपनी पत्नी का जिसने मुझे लिखने के चिंतित क्षणों में एक दोस्त की तरह अपना लिया। बंधु आकाश कुमार का जो शोध प्रबंध लिखने के लिए सहयोग और प्रेरणा देते रहे। अपने उन साथियों का जिन्हें मैं अकसर कठिन समय में अपने पास पाता हूँ। दक्खिनी साहित्य के उन विद्वानों और प्रकाशनों का जिनके द्वारा लिखित-प्रकाशित दक्खिनी के ग्रन्थों से मुझे निश्चय ही शोध में सहायता मिली। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय लाइब्रेरी और इंटरनेट पोर्टल आर्काइव डॉट ओआरजी का जहाँ से शोध संबंधी अधिकांश सामग्री उपलब्ध हुई।

**********

# पहला अध्याय

## मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : एक सर्वेक्षण

# पहला अध्याय

## मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : एक सर्वेक्षण

### पीठिका

जिस खड़ी बोली का विकसित रूप आज हिन्दी के रूप में हम देखते हैं उसके पीछे की एक बेहद महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में दक्खिनी साहित्य के महत्त्व पर विचार करना आवश्यक है। हाशमबेग मिर्ज़ा के मुताबिक़ हिन्दी को गरिमामय पद तक पहुँचाने में उर्दू, दक्खिनी और मुसलमानों का विशेष योगदान रहा है। मुस्लिम साहित्यकारों एवं मुस्लिम सूफ़ी संतों के साथ मुस्लिम राजाओं की साम्राज्य विस्तार की अभिलाषा भी हिन्दी के विकास की सबसे महत्त्वपूर्ण कड़ी बनी है।[1]

बहरहाल, 'मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : एक सर्वेक्षण' पर बात करने से पूर्व हमें उस पृष्ठभूमि को समझना होगा जिसमें दक्खिनी भाषा-साहित्य को पनपने का अवसर मिला। वास्तव में दक्खिनी जिस रूप में साहित्य रचना का माध्यम बनी, उसके पीछे भारत की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि कई कारणों की प्रवाह अन्विति को जानना चाहिए। इन्हीं परिप्रेक्ष्यों को समझ कर आगे हम दक्खिनी साहित्य में मराठी संतों की स्थिति को समझ सकते हैं।

### इस्लाम का उदय और उसका भारत में आगमन

हिन्दी कवि गजानन माधव मुक्तिबोध अपनी क़िताब 'भारत : इतिहास और संस्कृति' में बतलाते हैं कि "सन् 570 ई. में हज़रत मुहम्मद के जन्म के पूर्व, अरब जाति अज्ञान के अंधकार में पड़ी हुई थी। ...नवयुवक होने पर हज़रत मुहम्मद सीरिया चले गए, वहाँ उन्हें एकेश्वरवाद की

1. देखें – हाशमबेग मिर्ज़ा, दक्खिनी हिन्दी साहित्यकार मुल्ला वजही, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण – 2011 ई., प्राक्कथन, पृष्ठ – 07

विचारधारा प्राप्त हुई। एक दिन उन्हें इलहाम ( ईश्वरीय संदेश ) मिला। उन्होंने अरबों में एकेश्वरवाद का प्रचार किया। ...मुहम्मद साहब सन् 622 ई. में मदीना आ गए।"[2] इसी तिथि से इस्लाम का हिज़री सन् शुरू होता है। सन् 632 ई. में हज़रत मुहम्मद साहब का देहांत हो गया। मुक्तिबोध के मुताबिक़ हज़रत मुहम्मद के अरब उत्तराधिकारी ख़लीफ़ाओं ( धर्म-राजाओं ) ने इस्लाम की दिग्विजय यात्रा आरंभ की और एक दिन वे पूरब में भारत के उत्तर-पश्चिम की तरफ पहुँच गए। इससे पूर्व उनकी जल-सेना भारत के दक्षिण-पश्चिम समुद्र तट पर आ लगी थी।[3] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अरब के लोग बहुत अच्छे मल्लाह थे, साहसी व्यापारी थे, जो इस्लाम के उदय से पूर्व ही दक्षिण भारत के समुद्रतटीय नगरों में आबाद थे। "अरब से आने वाले मुसलमान सबसे पहले मालाबार समुद्र तट आए थे। ये सातवीं से नौवीं शताब्दी के बीच बसे थे। वे लोग रोज़गार के सिलसिले में यहाँ आए। 712 ई. में मुहम्मद बिन क़ासिम ने सिंध के कुछ भागों पर कब्ज़ा किया।"[4] यानी तब से लेकर "अलाउद्दीन खिलज़ी ने दिल्ली से दक्खिन की ओर जाने की जो शुरुआत की, उसके बाद कई सौ वर्षों तक चढ़ाइयों का क्रम रुका नहीं।"[5] इसके फलस्वरूप, दक्षिण भारत की सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ इस्लाम से अत्यधिक प्रभावित हुईं। जबकि दक्षिण भारत में इस्लाम सातवीं सदी के अंत तक पहुँच चुका था। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि "चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दिल्ली के सुलतानों ने हरियाणा और कुरू प्रदेशों के लोगों को दक्षिण में दौलताबाद और उसके आसपास जा बसाया। धीरे-धीरे दक्षिण में पाँच स्वतंत्र राज्य स्थापित हुए – गुलबर्गा, बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर और बरार।"[6] सन् 1687 ई. में औरंगज़ेब ने गोलकुंडा पर अधिकार किया। इस घटना के बाद क्या

---

2. नेमिचन्द्र जैन ( संपादक ), मुक्तिबोध रचनावली ( खण्ड - 6 ), राजकमल प्रकाशन, संस्करण – 2011 ई., पृष्ठ – 505
3. देखें – नेमिचन्द्र जैन ( संपादक ), मुक्तिबोध रचनावली ( खण्ड - 6 ), वही, पृष्ठ – 506
4. कृपाशंकर सिंह, इतिहास का सच और हिन्दी-उर्दू तथा दक्खिनी-हिन्दी, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2011 ई., पृष्ठ – 09 { मुक्तिबोध के मुताबिक़ भी उत्तर-पश्चिम मार्ग से भारत पर सन् 712 ई. में बग़दाद के ख़लीफ़ा के सेनापति मुहम्मद बिन क़ासिम ने आक्रमण किया था। भारत में उन दिनों कोई ऐसी शक्ति न थी, जो इनके आक्रमण को रोक सकती थी। जब सिंध का राजा दाहिर लड़ाई में मारा गया तो सिंध और पश्चिमी पंजाब का इलाका अरबों के हाथ लगा। [ देखें – नेमिचन्द्र जैन ( संपादक ), मुक्तिबोध रचनावली ( खण्ड - 6 ), वही, पृष्ठ – 506 ] }
5. वही, पृष्ठ – 48
6. हरदेव बाहरी, हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप, क़िताब महल प्रकाशन, संस्करण – 2005 ई., पृष्ठ – 85

परिणाम हुए यह तथ्य भी यहाँ स्पष्ट होना यानी इन अर्थों में विचारणीय है कि "इस अधिकार के साथ क़ुतुबशाही राज्य की समाप्ति हुई और उसके साथ दक्खिनी के साहित्य का लगभग अवसान हुआ।"[7] अब आगे हम उन परिस्थितियों की पड़ताल करेंगे जिन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि कारणों से दक्खिनी भाषा-साहित्य दक्षिण भारत में अपने उत्कृष्ट स्वरूप को प्राप्त कर चुकी थी। इस्लाम के साथ सूफ़ी संतों ने किस प्रकार दक्खिनी के विकास में अपना योगदान दिया यह भी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। बहरहाल, इन्हीं बातों की चर्चा करते हुए इस अध्याय में आगे हम दक्खिनी साहित्य में मराठी संतों के योगदान पर भी दृष्टि डालेंगे।

## दक्षिण भारत में इस्लाम, सूफ़ी और दक्खिनी

दक्षिण के क़ुतुबशाही शासन काल को ही हाशमबेग मिर्ज़ा ने दक्खिनी के लिए स्वर्णयुग कहा है।[8] दक्षिण में राज्याश्रय पाकर उसने उत्तर भारत के विपरीत फ़ारसी को राजभाषा से अपदस्थ कर दिया था।[9] इसके पीछे स्पष्ट कारण थे, सूफ़ी मुस्लिम संदेशवाहकों ने अपनी रचनाओं के लिए शासक मुस्लिमों की भाषा और स्थानीय बोलियों भाषाओं के बीच यानी उत्तर-दक्षिण की भाषाओं के साथ दक्खिनी के रूप में एक मध्यस्थ भाषा की निर्मिति की थी, जिसे मुस्लिम शासकों ने अपने लिए दक्षिण भारत में संपर्क और कामकाज़ की भाषा के रूप में चुन लिया। स्वयं दक्षिण के कई मुस्लिम शासक दक्खिनी भाषा के कवि-साहित्यकार भी थे। दक्खिनी की मूल भाषायी संरचना में मुस्लिम शासित दक्षिण भारत की भाषाओं का भी शाब्दिक सामंजस्य था, इसलिए उत्तर से दक्षिण तक इन सूफ़ियों की भाषा को समझा जा सकता था, जिसमें उत्तर भारत की खड़ीबोली के विकसित होते आरंभिक रूप की झलक थी। यहाँ यह स्पष्ट है कि शासन और सूफ़ियों के प्रभाव में ही दक्खिनी अधिकाधिक लोगों में समझी जाने लगी थी। जिसके कुछ कारणों में एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी था

7. कृपाशंकर सिंह, इतिहास का सच और हिन्दी-उर्दू तथा दक्खिनी-हिन्दी, वही, पृष्ठ – 49
8. देखें – हाशमबेग मिर्ज़ा, दक्खिनी हिन्दी साहित्यकार मुल्ला वजही, वही, पृष्ठ – 13
9. देखें – बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण – 2016 ई., पृष्ठ – 173

कि उत्तर से दक्षिण भारत की ओर बढ़ती मुस्लिम शासन-व्यवस्था के साथ उत्तर भारत की सांस्कृतिक इतिहास की धारा भी उस दिशा में बढ़ चली थी। बहरहाल, यह समझने की आवश्यकता है कि इस सांस्कृतिक इतिहास की धारा के पीछे के महत्त्वपूर्ण कारक क्या हो सकते हैं। हमें इससे दक्खिनी के विकास क्रम को समझने में आसानी होगी।

**उत्तर-दक्षिण भारत के इतिहास की संगमधारा और दक्खिनी का विकास**

भारतीय इतिहास के अतीत में भी उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर की यह संगमधारा इसी तरह प्रवाहमान रही है, परमानंद पांचाल के मुताबिक़ आर्यों और द्रविड़ों के मध्य संघर्ष की कहानी पाश्चात्य इतिहासकारों की देन है।[10] प्राचीन ग्रंथों को देखें तो उनमें बताया गया है कि समुद्र से उत्तर और हिमालय से दक्षिण वाला भू-भाग हमेशा से एक देश माना जाता रहा है; पुराणों में एक 'वायु पुराण' में यह एकता स्पष्ट रूप से इस प्रकार वर्णित है –

*उत्तर यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चेव दक्षिणम्।*
*वर्ष तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्तति॥*[11]

– वायु पुराण

यही नहीं, बल्कि इस देश की मोक्षदायिका नगरियों के नामों की सूची में भी उत्तर और दक्षिण दोनों भू-भागों के नगर शामिल हैं, जिनका धार्मिक भाव से नामोच्चार उत्तर और दक्षिण दोनों भागों की श्रद्धालु जनता सदा करती रही है –

*अयोध्या-मथुरा-माया-काशी-कांची-अवन्तिका।*
*पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्षदायिका॥*[12]

10. देखें – परमानंद पांचाल ( चयन एवं संपादन ), दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, साहित्य अकादेमी, संस्करण – 2008 ई., पृष्ठ – 16
11. देखें – वही, उद्धृत श्लोक, पृष्ठ – 16
12. देखें – वही, उद्धृत श्लोक, पृष्ठ – 16

बहरहाल, धार्मिक तीर्थ-यात्रा की भावना से भारतवासी देश भर में घूमते थे; शास्त्रार्थ अथवा नए विचारों का प्रचार करने के लिए भी सभी भागों के संस्कृत विद्वान सारे भारत का भ्रमण करते थे और इसमें संदेह नहीं कि उस दौर में समस्त देश के श्रेष्ठ साहित्य की भाषा संस्कृत थी। लेकिन एक कालखण्ड में इसी के साथ पालि, प्राकृत और द्रविड़ भाषाओं ( मलयालम, तमिल, तेलुगू और कन्नड़ ) का भी विपुल साहित्य मिलता है, जिसे हम नकार नहीं सकते। क्योंकि इसमें भी भारतीय मानस की स्रोतस्वनी हमें दीखती है। पीछे जब देशी भाषाओं का समय आया, तब भी भारत की वही मानस धारा प्रवाहित होती रही जो संस्कृत में बहती थी।[13] जिसका साक्ष्य स्वयं आज भी भारतीय जनमानस की मध्यकालीन चेतना में देखा जा सकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मध्यकाल में भक्ति-आंदोलन की जो उत्सवधर्मिता हमें दिखाई देती है उसके उत्स का दक्षिण भारत में ही आरंभ माना जाता है।[14] नामदेव जैसे संत भी इसी परंपरा में दक्षिण से उत्तर की यात्रा पर निकलते हैं। बहरहाल। मुस्लिम शासन के उस दौर में रची जा रही दक्खिनी कविता पर बच्चन सिंह की टिप्पणी उल्लेखनीय है, जो उस रंगत को बयान करती है जिसमें दक्खिनी को समृद्ध होने का मौक़ा मिला था – "बीजापुर और गोलकुंडा दरबार ने दक्खिनी हिन्दी के कवियों को यथोचित प्रोत्साहन और आश्रय दिया। गोलकुंडा और बीजापुर के बादशाह स्वयं कवि थे। इसलिए भी उन्होंने कविता की उन्नति में गहरी दिलचस्पी ली और उसे धार्मिकता से मुक्त कर संवेदना के स्तर पर ला खड़ा किया।"[15] सन् 1707 ई. में औरंगज़ेब की मृत्यु भी दक्खिन में ही हुई थी। यानी इस हिसाब से मध्यकालीन दक्खिनी साहित्य का विकास सन् 712 ई. के मुहम्मद बिन क़ासिम के काल से लेकर सन् 1707 ई. में औरंगज़ेब काल समाप्त होने के बीच हुआ। यह दृष्टव्य है कि इसी दौर में दक्खिनी को साहित्यिक भाषा के रूप में पनपने का अवसर मिला था। साथ ही, दक्खिनी को राजाश्रय के रूप में

---

13. देखें – रामधारी सिंह 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, पुनर्मुद्रण – 2012 ई., पृष्ठ – 53

14. इस स्थापना के संदर्भ के पीछे जो तथ्यात्मक दोहा है उसको जानने के लिए देखें – गोपेश्वर सिंह ( संपादक ), भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार, भारतीय प्रकाशन संस्थान, संस्करण – 2002 ई., पृष्ठ – 20 पर उद्धृत यह दोहा :

*भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद।*
*परगट किया कबीर ने सप्तदीप नवखंड॥*

15. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, वही, पृष्ठ – 171

संरक्षण भी मिला था। सूफ़ी संतों ने और बाद में मराठी संतों ने आगे चलकर दक्खिनी भाषा में विपुल साहित्यिक रचनाएँ कीं। स्वयं दक्षिण भारत के कई मुस्लिम शासक भी तब दक्खिनी में रचनाएँ कर रहे थे।

## दक्खिनी साहित्य का प्रादुर्भाव

इसी तरह इस्लाम के भारत में आने के बाद बाहर से आए मुसलमानों की भाषा के साथ यहाँ की स्थानीय भाषा का विकास-चक्र यानी संक्रमण-काल चलता रहा। लेकिन मुहम्मद बिन क़ासिम के शासन काल के लगभग 600 साल बाद दक्खिनी साहित्य का पहला कवि या ग्रंथकार ख़्वाजा बंदा नवाज़ गेसू दराज़ हुए, जो एक सूफ़ी थे। उनका संक्षिप्त परिचय यहाँ आवश्यक जान पड़ता है। राहुल सांकृत्यायन के मुताबिक़ इनका जन्म सन् 1318 ई. के आसपास में दिल्ली में हुआ। इनका मूल नाम सैयद मुहम्मद हुसैनी था। आमतौर से ये ख़्वाजा बंदा नवाज़ ( स्वामी भक्तवत्सल ) अथवा लम्बे केश रखने से ख़्वाजा बंदा नवाज़ गेसू दराज़ के नाम से प्रसिद्ध हैं। ज़िंदगी के अंतिम वर्षों में ख़्वाजा दक्खिन के गुलबर्गा में रहे जहाँ सन् 1423 ई. में इनका देहांत हुआ।[16] इनकी तीन रचनाएँ मेराजुल आशकीन, हिदायतनामा और रिसाले सह बारह मिलती हैं। कहा जाता है कि इन्होंने तलावतुल वजूद और शिकारनामा दक्खिनी में लिखे थे। इनके द्वारा लिखे गए दक्खिनी साहित्य की लिपि अरबी-फ़ारसी थी। हफ़ीज क़तील, जमील जालिबी ( पाकिस्तान ) तथा हुसैनी शाहिद जैसे विद्वानों का अब यह मत है कि मेराजुल आशकीन बंदा नवाज़ की रचना नहीं है। इनकी एकमात्र काव्य-रचना जो दक्खिनी में मिलती है वह 'चक्कीनामा' मानी जाती है।[17] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मुसलमानी शासन के प्रभाव में जब शासन केंद्र दक्षिण भारत की ओर बढ़ने लगा तब उस दौर के विकसित होते साहित्य की मूलभाषा दक्खिनी ही थी; जिसका भाषायी रूप तत्कालीन खड़ीबोली से

16. देखें – राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा, बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पुनर्मुद्रण – 2014 ई., पृष्ठ – 03 ( ख़्वाजा बंदा नवाज़ गेसू दराज़ के जन्मकाल और मृत्युकाल को लेकर विद्वानों में मतभेद भी है किन्तु सांकृत्यायन जी की पुस्तक को ही आधार ग्रंथ मानकर यहाँ बात कही गई है। )

17. देखें – परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 589

बहुत निकट से मेल खाता है। बहरहाल, लगभग सन् 1300 ई. के बाद से दक्खिनी साहित्य की धारा विकसित हो चली थी। इसी कालखण्ड के दौरान ऐसे मराठी संत कवि भी सामने आते हैं जो अपनी मातृभाषा मराठी के साथ दक्खिनी में भी काव्य-रचना कर रहे थे। इस पर आगे अध्याय में विस्तार से चर्चा होगी। फ़िलहाल, अभी हम दक्खिनी पर बात करने हेतु आगे बढ़ते हैं।

**दक्खिनी का नामकरण**

"स्थूल रूप से कहा जाता है कि भारत के दक्षिण प्रान्त में बोली जाने वाली भाषा 'दक्खिनी' है।"[18] धीरेन्द्र वर्मा बतलाते हैं कि "भाषा तथा साहित्यिक संदर्भ में इस शब्द का प्रयोग उस भाषा के लिए किया जाता है, जिसका प्रयोग दक्षिण के बहमनी वंश तथा बीजापुर, गोलकुंडा और अहमदनगर से संबंधित मुसलमान कवियों और लेखकों ने साहित्य के क्षेत्र में 15वीं शती से 18वीं शती तक किया और जो इन राज्यों की राजभाषा की तरह सम्मानित थी।"[19] फिर भी हिन्दी के कई विद्वानों ने दक्खिनी को अपने-अपने दृष्टिकोण से स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है, कि इस भाषा को किस नाम से संबोधित करें। जिस कारण इसके कई और नाम पड़े। जैसे – हिन्दवी ( हिन्दुई ), गुजरी, देहलवी, भाखा ( भाका ), रेख़्ता ( रेख़्ती ), हिन्दी, दक्खिनी इत्यादि। लेकिन दक्खिनी संकर वर्ण की भाषा कही जा सकती है, यह आज इसके अध्ययन से प्राप्त दक्खिनी के विकास-क्रम से पता चलता है। सिंध प्रांत से इस्लाम के आगमन के बाद जब इस्लामी भाषा और संस्कृति का भारतीय भाषा और संस्कृति से मेल होता है तो एक नए अनुशासन का निर्माण होता है जो संकर वर्ण की संस्कृति की परिचायक जान पड़ती है। इस संस्कृति से जिस भाषा का पहले पहल विकास होता है उसे ही दक्खिनी के रूप में जाना जाता है ( बाबूराम सक्सेना का मानना है कि जो लोग यह मानते हैं कि हिंदुओं और मुसलमानों के मेल से उर्दू या दक्खिनी भाषा/बोली का विकास हुआ है उन्हें भाषा विज्ञान

18. हाशमबेग मिर्ज़ा, दक्खिनी हिन्दी साहित्यकार मुल्ला वजही, वही, पृष्ठ – 13
19. धीरेन्द्र वर्मा ( प्रधान संपादक ), हिन्दी साहित्य कोश ( भाग - एक ), पारिभाषिक शब्दावली, वाराणसी ज्ञानमण्डल लिमिटेड, संस्करण – 1963 ई., पृष्ठ – 365

के मौलिक सिद्धांतों का और आर्य-भाषाओं के इतिहास का अज्ञान है। क्योंकि ये भाषा/बोली इनके अनुसार शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश की आत्मजा है। जिस भाषा को भाषाविज्ञानियों ने पश्चिमी हिन्दी की हिन्दुस्तानी शाखा कहा है, वही इसकी मूल है। मुसलमानों द्वारा अरबी, फ़ारसी, तुर्की आदि के शब्द इसमें जोड़ देने से ये कोई दूसरी नई भाषा नहीं हो जाती मूलतः बाबूराम सक्सेना की स्थापना यह है। [20] बहरहाल, इस संदर्भ में हमें ध्यान रखना चाहिए कि किसी भाषा के विकास का अध्ययन केवल भाषा विज्ञान के स्थाई कारकों पर ही निर्भर नहीं करता बल्कि वह सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक उपादानों के गतिशील व्यवहार जगत के फलस्वरूप भी उस नई भाषा के अन्वेषण का मार्ग प्रशस्त करता है।), जिसे दक्खिनी के कवियों ने कई नामों से नवाज़ा है। यानी दक्खिनी का कोई एक मूल स्थायी नामकरण दक्खिनी साहित्य में दिखाई नहीं देता है। दरअसल उसे भिन्न-भिन्न नामों से उसके कवियों और साहित्यकारों ने संबोधित किया। यह भी दक्खिनी के विकास-क्रम का ही एक हिस्सा है। जिसे हमें दक्खिनी साहित्य को समग्रता में समझने के लिए काम में लेना चाहिए। वास्तव में दक्खिनी के साथ विविध रचनाकारों के दिए नामों का एक समुच्चय है। आगे हम दक्खिनी भाषा-साहित्य के नामकरण के संदर्भ में प्रयुक्त नामों के इसी समुच्चय पर विचार करेंगे।

## हिन्दवी या हिन्दुई

*नज़्म लिखी सब मौजू आन*
*यो सब हिन्दवी कर आसान।*[21]
– शाह अशरफ़ बयाबानी, 'नौसरहार' में ( सन् 1503 ई. )

[ मैंने उस भाषा में काव्य निर्माण किया जो आसान है और उसका नाम हिन्दवी है। ]

अमीर ख़ुसरो ( सन् 1253-1325 ई. ) ने अपने काव्य में जगह-जगह अपनी भाषा के नाम का उल्लेख किया है, 'गुर्रातुल कमाल' में वे कहते हैं –

20. देखें – बाबूराम सक्सेना, दक्खिनी हिन्दी, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, संस्करण – 1952 ई., पृष्ठ – 39 से 43 तक
21. देखें – हाशमबेग मिर्ज़ा, वही, पृष्ठ – 14 पर उद्धृत, संदर्भ – शेख़ असरफ़, नौसरहार, पृष्ठ – 69

*तुर्क हिन्दुस्तानियम मन हिन्दवी गोयम जवाब*
*शकर मिस्री न दारम कज़ अरब गोयम सुखन ।*[22]

[ मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ और हिन्दवी में जवाब देता हूँ, मेरे पास मिस्र ( इजिप्ट देश ) की शक्कर नहीं है कि मैं अरबी की बात करूँ । ]

'गुर्रातुल कमाल' में ही एक अन्य स्थान पर अमीर ख़ुसरो कहते हैं –

*हिन्दुई बूद अस्त दर अय्यम-कुहन ।*[23]

[ हिन्दुई भाषा का प्रचलन प्राचीन काल में था और आज भी है । ]

इन कवियों से भी पहले प्रसिद्ध भारतीय फ़ारसी कवि मुहम्मद औफ़ी ने सन् 1228 ई. में 'मसऊद-ए-साअस-ए-सुलेमान' नामक अपनी रचना में स्वयं को 'हिन्दुई' का कवि कहा है । वे कहते हैं –

*यके वताजी वयके ब पारसी बयके-ब-हिन्दुवी ।*[24]

इनके अलावा 'इब्राहीमनामा' के कवि अब्दुल भी अपनी काव्य भाषा को 'हिन्दवी' करार देते हुए कहते हैं –

*जबाँ हिन्दवी मुझ सूँ होर देहलवी*
*ना जानू अरब होर अजब मसनवी ।*[25]

माता प्रसाद गुप्त द्वारा संपादित उत्तर भारत में रचित 'क़ुतुब-शतक' का एक सुंदर पद नीचे दिया जा रहा है ये हिन्दुई या हिन्दवी भाषा के नमूने हैं जिन्हें बाद में विद्वानों ने दक्खिनी के अंतर्गत ही रखा है; आरंभिक दक्खिनी भाषा की सफ़ाई इन नमूनों में देखी जा सकती है । विषयवस्तु के रूप में भी ये दक्खिनी काव्य-रचना के प्रतिमान हो सकते हैं –

---

22. देखें – वही, पृष्ठ – 14 पर उद्धृत, संदर्भ – परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी विकास और इतिहास, पृष्ठ – 26
23. देखें – वही, पृष्ठ – 14 पर उद्धृत, संदर्भ – परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 26
24. देखें – वही, पृष्ठ – 14 पर उद्धृत, संदर्भ – परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 27
25. देखें – वही, पृष्ठ – 14 पर उद्धृत, संदर्भ – मसुद हुसैन खाँ ( संपादक ), इब्राहीमनामा, पृष्ठ – 19

*बीबी बीवानां कौं फ़ारसी ।*
*हिन्दुही च्यारों ही हकीकति ।*
*तरीफ वेद की कुरान की ।*
*बड़ा भाई हंयदु छोटा भाई मुसलमान ।*
*हयंदूई मौं पंडित नाम राषौ ।*[26]

[ कुतुबशतक की राजकुमारी न केवल सुंदर एवं सुसंस्कृत थी बल्कि उसे फ़ारसी का ज्ञान भी था और हिन्दुओं के चारों वेदों की भी वह अध्येता थी तथा क़ुरान का पठन भी करती थी। अंतिम दो पंक्ति का अर्थ है - मेरा बड़ा भाई हिन्दू था और छोटा भाई मुसलमान इसलिए मेरा नाम रखा गया पंडित। ]

मध्यकालीन सूफ़ी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने भी देसी भाषा के लिए 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग किया है –

*तुर्की, अरबी, हिन्दवी भाषा जेति आहि,*
*जा में मारग प्रेम का, सबै सराहैं ताहि ।*[27]

[ तुर्की, अरबी, और हिन्दवी भाषा जहाँ आए वहाँ प्रेम का मार्ग है, सब उसकी सराहना करते हैं। ]

भारतीय भाषाविदों के अनुसार हिन्दी 'स' ध्वनि फ़ारसी में 'ह' बन जाती है, ( सिंधु – हिन्दु ) जिससे यहाँ रहने वालों की भाषा 'हिन्दुई' या 'हिन्दवी' कहलाई। यह स्पष्ट होता है कि दक्खिनी के लिए हिन्दुई या हिन्दवी नाम का प्रचलन आम हो गया था।

**गुजरी**

इससे अलग दक्खिनी भाषा को ही गुजरात में 'गुजरी' नाम से जाना जाता था। दरअसल, कुछ सूफ़ी संत कवि दक्खिनी के मुख्य राजशाही क्षेत्रों से निकल कर राजाश्रय के लिए दूसरे राजशाही क्षेत्रों में पलायन कर रहे थे, जहाँ दक्खिनी की शैली को ही अलग नाम दिया जा रहा था। इन्हीं में से

26. देखें – वही, पृष्ठ – 14 पर उद्धृत, संदर्भ – माता प्रसाद गुप्त ( संपादक ), कुतुब शतक और उसकी हिन्दुई
27. देखें – परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 15

एक दक्खिनी कवि शाह बुरहानुद्दीन जानम ने अपनी भाषा को 'गुजरी' या 'गूजरी' नाम से अभिहीत किया है। क्रमशः 'कल्मतुल हक़ायक़', 'जातुल बक़ा' और 'इर्शादनामा' में वे कहते हैं –

*सब यूँ जबान गूजरी नाम,*
*ई क़िताब कल्मतुल हक़ायक़ ।*[28]

---

*जिसे होवे ज्ञान बिचारी, न देखें भाका गुजरी ।*[29]

---

*ये सब गुजरी किया बयान – कर यह आईना दिया नमान ।*[30]

हाशमबेग मिर्ज़ा के शब्दों में "'गुजरी' भाषा को अपने काव्य की भाषा मानने वाले दक्खिनी कवियों पर उस समय की गुजराती बोली का प्रभाव दिखाई देता है। इनमें से बहुत से कवियों का संबंध गुजरात से था। कुछ कवि राजाश्रय के बहाने उस प्रांत में गए और वहीं पर अपने काव्य की रचना की तथा वहीं पर बस गए जिसमें अहमदाबाद शहर उनका प्रमुख स्थल था।"[31] वास्तव में दक्खिनी जिस राजाश्रय के संरक्षण को पा रही थी, वह उसी के अनुसार ढलती जाती थी। जिस शासक को दक्खिनी के सूफ़ी संतों ने अपने अनुकूल समझा उसी के राजाश्रय में जाकर अपना आधार भी ढूँढ़ लिया। क्योंकि स्वयं कई मुस्लिम शासक भी दक्खिनी में रचना करने के कायल थे।

**देहलवी**

कुछ विद्वानों ने इस भाषा को 'देहलवी' नाम से भी संबोधित किया है। श्रीराम शर्मा इस संदर्भ में कवि 'अब्दुल' की ये पंक्तियाँ प्रस्तुत करते हैं, जिसमें दक्खिनी को 'देहलवी' नाम से संबोधित किया गया है –

---

28. देखें – हाशमबेग मिर्ज़ा, वही, पृष्ठ – 15 पर उद्धृत, संदर्भ – शाह बुरहानुद्दीन जानम, कल्मतुल हक़ायक़, पृष्ठ – 03
29. देखें – वही, पृष्ठ – 15 पर उद्धृत, संदर्भ – मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी ( संपादक ), क़दीम उर्दू, ( शाह बुरहानुद्दीन जानम, जातुल बक़ा ), पृष्ठ – 137
30. देखें – वही, पृष्ठ – 15 पर उद्धृत, संदर्भ – मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी ( संपादक ), क़दीम उर्दू, ( शाह बुरहानुद्दीन जानम, इर्शादनामा ), पृष्ठ – 137
31. हाशमबेग मिर्ज़ा, दक्खिनी हिन्दी साहित्यकार मुल्ला वजही, वही, पृष्ठ – 15

*सो यू बचन सूं शाह उस्ताद कान*
*पूछया जगत गुरू शेर कह किसे जुबान*
*जबाँ हिंदवी मुझ सूं हौर देहलवी*
*ना जानूं अरब हौर अज़म मसनवी*[32]

**भाखा या भाका**

दक्खिनी के लिए कुछ विद्वान 'भाखा' या 'भाका' शब्द का प्रयोग भी करते हैं। इस संबंध में दशरथराज असनानी बतलाते हैं कि शाह मीराञ्जी शम्सुलुश्शाक ( सन् 1496 ई. ) जो दक्खिनी के बड़े सूफ़ी संत कवि हैं, उन्होंने अपनी भाषा के विषय में इस नाम का उल्लेख करते हुए लिखा है –

*ये भाका ( भाखा ) भल सो बोली पन इसका भावत खोली,*
*यू गुर मुक पद पाया तो ऐसे बोल चलाया।*[33]

– शाह मीराञ्जी शम्सुलुश्शाक

लेकिन फिर भी, इस नाम का उल्लेख मीराञ्जी भी अन्य जगह नहीं कर पाए। आगे चलकर अनुसंधानकर्त्ताओं ने 'भाखा' को भाषा शब्द मान कर इस के संबंध में कुछ ज्यादा जानकारी प्राप्त नहीं की। जो संभवतः दक्खिनी की दृष्टि से उचित भी जान पड़ता है। इसके पीछे स्थिति यह बन पड़ती है कि यह 'भाखा' या 'भाका' स्वयं दक्खिनी से इतर नहीं थी।

**रेख़्ता या रेख़्ती**

इसी क्रम में दक्खिनी के लिए कुछ विद्वान 'रेख़्ता' या 'रेख़्ती' यह नाम भी स्वीकार करते हैं। "'खड़ीबोली' को ही दक्षिण में 'रेख़्ता' या 'दक्षिणी' आदि नामों से जाना जाता था।"[34] लेकिन यह दक्खिनी भाषा की एक शैली है नाम नहीं ऐसा भी कहा जाता है। माधव सोनटक्के अपने 'हिन्दी भाषा तथा साहित्यशास्त्र' में लिखते हैं कि "रेख़्ता हिन्दी की उस शैली का नाम है, जिसमें फ़ारसी

32. देखें – हाशमबेग मिर्ज़ा, वही, पृष्ठ – 16 पर उद्धृत, संदर्भ – श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का उद्भव और विकास, पृष्ठ – 32
33. देखें – वही, पृष्ठ – 16 पर उद्धृत, संदर्भ – दशरथराज असनानी, दक्खिनी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ – 14
34. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, वही, निदेशक जयकृष्ण मेहता का वक्तव्य, पुनर्मुद्रण – 2014 ई.

शब्दों का सम्मिश्रण हो।"[35] इसी 'रेख़्ता' या 'रेख़्ती' की शैली के संदर्भ में मिर्ज़ा ग़ालिब बयान करते हैं –

*"रेख़्ते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो 'ग़ालिब'*
*कहते हैं अगले ज़माने में कोई 'मीर' भी था।"*[36]

[ ग़ालिब ! तुम्हें यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि रेख़्ते ( उर्दू ) में शे'र कहने वाले सबसे बड़े शाइर तुम ही हो। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि तुम से पहले 'मीर' की गिनती भी रेख़्ते ( उर्दू ) के बड़े शाइरों में थी। ]

इसका प्रयोग दक्खिनी के बहुत कम कवियों ने किया है जिसमें वली औरंगाबादी का नाम मुख्य है। वे इस संबंध में कहते हैं –

*इस रेख़्ते को सुनके हो मानो निगार बंद।*[37]

**हिन्दी**

दक्खिनी को कुछ विद्वानों ने सीधे 'हिन्दी' कह कर संबोधित किया, वैसे ही जैसे कुछ कवियों ने अपनी दक्खिनी कविताओं की भाषा को सीधे 'हिन्दी' कह कर संबोधित किया है। शाह मीराञ्जी 'शम्सुल्उश्शाक' के शिष्य एवं पुत्र शाह बुरहानुद्दीन जानम अपनी भाषा को 'हिन्दी' नाम से संबोधित करते हैं। यहाँ शाह बुरहानुद्दीन जानम की दक्खिनी काव्य-रचना 'इर्शादनामा' से उनकी यह काव्य पंक्तियाँ अवश्य ही दृष्टव्य हैं –

*ऐब न राखे हिन्दी बोल, माना तो चक देखें धंड़ोल।*
*जूँ के मोती समुंदर सात, डाबर में जे लागे हात॥*

---

35. देखें – हाशमबेग मिर्ज़ा, वही, पृष्ठ – 16 पर उद्धृत, संदर्भ – माधव सोनटक्के, हिन्दी भाषा तथा साहित्यशास्त्र, पृष्ठ – 49
36. 08 July, 2018 : https://www.rekhta.org/couplets/rekhte-ke-tumhiin-ustaad-nahiin-ho-gaalib-mirza-ghalib-couplets?lang=hi ( देखें – नसीम अब्बासी ( व्याख्याता ), दीवान-ए-ग़ालिब, ग़ालिब अकेडमी, नई दिल्ली, संस्करण – 2014 ई., पृष्ठ – 83 )
37. देखें – हाशमबेग मिर्ज़ा, वही, पृष्ठ – 16 पर उद्धृत, संदर्भ – मुहम्मद आजम ( संपादक ), वली औरंगाबादी, पृष्ठ – 382

*क्यूँ न लेवे उसकी कोए, सुहाना चतुर जे कोई होए ।*
*हिन्दी बोलूँ किया बखान, जे गुरु परसाद था मुंजग्यान ॥*[38]

– शाह बुरहानुद्दीन जानम, इर्शादनामा

[ हिन्दी के प्रयोग को ऐब समझने वालों को मैंने ये बातें हिन्दी में ही कही हैं किन्तु उन्हें शरबत का घूँट समझना चाहिए। यह देसी बोली है, इसमें सिर्फ़ अर्थ देखो। यह न कहो कि यह हिन्दी भाषा है, बल्कि आँखें खोलकर आशय ग्रहण करो। समुद्र के मोती घड़े में मिल जाएँ तो चतुर और समझदार आदमी उसे क्यों न लें। मैंने यह बातें इसलिए हिन्दी में व्यक्त की क्योंकि मेरे गुरु ने मुझे यही ज्ञान दिया था। ]

*यह सब बोलूँ हिन्दी बोल, पर तूँ अंभू सेती खोल ।*
*है ये दिया भास पटक पन तूँ माना देख सगट ॥*[39]

– शाह बुरहानुद्दीन जानम, इर्शादनामा ( सन् 1583 ई. )

दक्खिनी को 'हिन्दी' संबोधित करने वालों में स्वयं बुरहानुद्दीन जानम के पिता शाह मीराञ्जी भी शामिल हैं जो सूफ़ी श्रेष्ठ साधक और दक्खिनी के कवि थे। इन्हें 'शम्सुल्उश्शाक' ( प्रेमियों का सूर्य अथवा भक्तसूर्य ) भी कहा जाता है। वे भी अपनी भाषा को 'हिन्दी' कहते हैं –

*है अरबी बोल केरे। और फ़ारसी बहुतेरे ॥*
*ये हिन्दी बोलूँ सब। उस अंतरो के सबब ॥*
*ये गुरु मुख पंद पाया। तो ऐसे बोल चलाया ॥*
*वे अरबी बोल न जाने। ना फ़ारसी पछाने ॥*
*ये मग़्ज़ मीठा लागे। तो क्यूँ मन उस थे भागे ॥*[40]

– शाह मीराञ्जी 'शम्सुल्उश्शाक', खुशनामा

दक्खिनी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यकार एवं 'सबरस' के रचनाकार मुल्ला वजही भी अपनी भाषा को 'हिन्दी' ही कहते हैं –

---

38. देखें – वही, पृष्ठ – 17 पर उद्धृत, संदर्भ – नसीरुद्दीन हाशमी, योरोप में दक्खिनी मख्तुतात, पृष्ठ – 19
39. देखें – वी. पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर, दक्खिनी हिन्दी भाषा और साहित्य : विकास की दिशाएँ, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण – 2011 ई., पृष्ठ – 48
40. देखें – हाशमबेग मिर्ज़ा, वही, पृष्ठ – 17 पर उद्धृत, संदर्भ – अब्दुल हक्क, उर्दू की इब्तदाई नशोनुमा में सूफ़ियाएँ, पृष्ठ – 42

*हिन्दुस्तान में, हिन्दी जबाँनसूँ इस लताफ़त,*
*इस छंदाँ नज़्म होर नसर मिला कर,*
*गुला कर यूँ नई बोल्या ।*[41]

इसी क्रम में कई अन्य दक्खिनी साहित्यकार भी दक्खिनी के लिए 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग करते हैं जिनमें 'मन लगन' के रचनाकार काझी महमूद 'बहरी', 'चंदरबदन' के रचनाकर बुलबुल, मीरा याकूब, 'रिसाला फ्रिक़ा हाव इस्लाम' के रचनाकार बाकर आगाह, काझी बारूद्दौला और सूफ़ी संत वलिउल्ला क़ादरी प्रमुख हैं ।[42]

**दक्खिनी**

इसको 'दक्खिनी' अथवा 'दकनी' कहने वाले कवियों की संख्या शायद सबसे अधिक है। ज्ञात होता है कि पहले पहल क़ुरैशी बीदरी ने इसे 'दक्खिनी' कहा था । अपनी लोकप्रिय कृति 'भोगबल' ( यह महमूद शाह बहमनी के शासन काल सन् 1482-1520 ई. में लिखी गई थी ) के अंत में वे लिखते हैं –

*सो इस शाह के दौर में बीदर मुक़ाम*
*यो शायर किया नज़्म दक्खिनी तमाम*[43]

'पिरतनामा' की भूमिका में मसूद हुसैन खाँ भी इस मत से सहमत हैं। उनका कहना है कि "क़ुरैशी ग़ालबान पहला मुसन्निफ़ है जिसने 'उर्दू-ए-क़दीम' को इसके मुक़ामी नाम 'दक्खिनी' के नाम से याद किया है।"[44]

मुल्ला वजही ने अपनी मसनवी 'क़ुतुब मुश्तरी' में अपनी भाषा के संबंध में लिखा है –

41. देखें – वही, पृष्ठ – 17 पर उद्धृत, संदर्भ – श्रीराम शर्मा ( संपादक ), मुल्ला वजही, सबरस, पृष्ठ – 10
42. देखें – वही, पृष्ठ – 17-18
43. देखें – परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 26 पर उद्धृत, संदर्भ – मसूद हुसैन खाँ ( संपादक ), पिरत नामा ( क़ुतुबुद्दीन क़ादरी 'फ़िरोज़' बीदरी ), पृष्ठ – 342
44. परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 26 पर उद्धृत, संदर्भ – मसूद हुसैन खाँ ( संपादक ), पिरत नामा ( क़ुतुबुद्दीन क़ादरी 'फ़िरोज़' बीदरी ), वही, पृष्ठ – 342

*दखन में दखिनी मीठी बात का,*
*अदा नइँ किया कोई इस धात का ।*[45]

इब्ने निशाती 'फूलबन' में कहते हैं –

*उसे हर किस के तै समजा के तू बोल*
*दखन की बात सूं सारा बयां खोल ।*[46]

'गुलशने इश्क़' में नुस्रती ने स्पष्ट रूप से इसे दखनी माना है –

*सफ़ाई की सूरत की है आरसी*
*दखनी का किया हूँ शेर फ़ारसी*[47]

सनअती ने अपनी मसनवी 'क़िस्सा बेनज़ीर' ( 1645 ई. ) में स्वीकारोक्ति के स्वर में कहा है कि दखिनी भाषा फ़ारसी और संस्कृत से आसान है –

*जिसे फ़ारसी का न कुछ ग्यान है*
*सो दखिनी ज़बां उसको आसान है*
*सो इसमें सहंसकृत का है मुराद*
*किया इसते आसानगी का सुवाद ।*[48]

**भाषा के आधुनिक संदर्भ में दक्खिनी**

बहरहाल, इस दक्खिनी भाषा का कोई निश्चित नाम न होने के कारण भारत के जिस प्रदेश में भी इसका प्रवेश हुआ वहाँ इसने उस स्थान के अनुकूल ही अपनी अलग पहचान बना ली। वास्तव में जिसे 'खड़ीबोली' का नाम दिया जाता है, वही दक्खिन में पहुँचकर पहले 'हिन्दवी' के नाम से अभिहित हुई, फिर कालांतर में 'दक्खिनी' बन गई। जो कि आज की परिनिष्ठित हिन्दी का पूर्व रूप

45. देखें – परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 26 पर उद्धृत, संदर्भ – मुल्ला वजही, क़ुतुब मुश्तरी, दक्खिनी प्रकाशन समिति, पृष्ठ – 29
46. देखें – वही, पृष्ठ – 27 पर उद्धृत, संदर्भ – देवीसिंग चौहान ( संपादक ), इब्ने निशाती, फूलबन, पृष्ठ – 09
47. देखें – वही, पृष्ठ – 27 पर उद्धृत, संदर्भ – नसीरुद्दीन हाशमी, दकन में उर्दू, पृष्ठ – 38
48. देखें – वही, पृष्ठ – 27 पर उद्धृत, संदर्भ – अब्दुल क़ादिर सरवरी ( संपादक ), क़िस्सा - ए - बेनज़ीर, पृष्ठ – 26

है। परमानंद पांचाल के मुताबिक़ इस मध्यकालीन भाषा के लिए और भी कई नाम प्रचलित हुए। इसे हिन्दुस्तान की भाषा के रूप में 'हिन्दुस्तानी' नाम भी दिया गया। फ़रिश्ता ( सन् 1607 ई. ) तथा टेरी ( सन् 1616 ई. ) और कैटलियर ( सन् 1715 ई. ) ने इसके लिए 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग किया है। आधुनिक युग में महात्मा गाँधी भी इस भाषा को 'हिन्दुस्तानी' ही कहना पसंद करते थे।[49] इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा के आधुनिक संदर्भों तक आते-आते दक्खिनी के नामकरण में बहुत बदलाव आ जाता है। यानी यह तथ्य स्पष्ट है कि इन उपरोक्त नामों पर विचार करते हुए भी इसे 'दक्खिनी' कहना ही उचित जान पड़ता है। क्योंकि जब इसे हम हिन्दी-उर्दू की पूर्ववर्ती बोली के रूप में मानते हैं तो यह और भी आवश्यक हो जाता है कि हम इसे केवल 'दक्खिनी' कहें। हिन्दी-उर्दू कोई दो भाषाएँ नहीं हैं, मूलतः उनमें लिपियों का अंतर है। सम्पूर्ण दक्खिनी साहित्य से परिचित होने पर सबसे पहली बात हमें यही स्वीकार करनी पड़ती है। बहरहाल, इस बात के प्रमाण स्वरूप यह तथ्य यहाँ उल्लेखनीय जान पड़ता है कि दक्खिनी के सभी मुस्लिम कवियों ने, जिनमें अधिकांश सूफ़ी थे, दक्खिनी में रचनाएँ लिखनी शुरू की लेकिन उनकी लिपि अरबी-फ़ारसी थी। यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मराठी संतों ने भी उसी समसामयिक दौर में दक्खिनी में रचनाएँ लिखीं लेकिन उनकी लिपि देवनागरी थी। आगे दक्खिनी के संदर्भ में यह कहना उचित जान पड़ता है कि हिन्दी भाषा की जो अन्य सहायक बोलिया हैं; जैसे – मगही, बुंदेली, छत्तीसगढ़ी इत्यादि। जिनके पीछे हम हिन्दी नहीं जोड़ते हैं। जिन्हें हम क्रमशः उन्हीं नामों यानी मगही, बुंदेली और छत्तीसगढ़ी कह कर ही पुकारते हैं। ठीक वैसे ही तार्किक रूप से दक्खिनी साहित्य की भाषा को दक्खिनी कहना ही न्यायसंगत होगा, चाहे उसे हम हिन्दी-उर्दू की पूर्व साहित्यिक बोली के रूप में लें या साहित्य भाषा के रूप में। ऐसा करके ही दक्खिनी अस्मिता की पहचान बनी रह सकती है और उसके अध्ययन की संभावना को नए सिरे से देखा जाना जा सकता है। आगे इन्हीं संभावनाओं के साथ हम इस अध्याय में 'मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : एक सर्वेक्षण' का अनुशीलन करेंगे क्योंकि आज दक्खिनी भाषा और

49. देखें – परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 15

साहित्यिकी का अकादमिक महत्त्व है एवं हमारे अध्ययन के लिए इसमें खड़ीबोली का आरंभिक रूप सुरक्षित है।

## दक्खिनी साहित्य की लिपि का प्रश्न

दक्खिनी में कई सौ वर्षों तक निरंतर काव्य-रचना होती रही जिसमें अनेक कवियों ने दक्खिनी साहित्य को पूर्णतः समृद्ध बनाने में अपना भरपूर योगदान दिया। दक्खिनी के प्रायः सभी मुस्लिम कवियों ने अपनी रचनाएँ अरबी-फ़ारसी लिपि में ही लिखी थीं, क्योंकि वे इसी लिपि से परिचित थे। किन्तु मराठी के कुछ संत कवि, जिन्होंने तत्कालीन दक्खिनी में भी कविताएँ की थीं, इस उपरोक्त धारणा के अपवाद थे। इन मराठी संतों ने अपनी दक्खिनी रचनाएँ पुरानी देवनागरी लिपि में लिखी थीं। हम इस अध्याय और आगे के अध्यायों में इन्हीं मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं पर चर्चा करेंगे। बहरहाल, यह उल्लेखनीय तथ्य है कि दक्खिनी साहित्य का समग्र संकलन करने का प्रयास करते हुए मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं को "उर्दू साहित्य के इतिहासकारों और समालोचकों ने छोड़ दिया है।"[50] लेकिन आज दक्खिनी साहित्य और भाषा के अध्येताओं को ध्यान रखना होगा कि "लिपि के आधार पर भाषा का निर्णय करना असंगत और अनुचित है।"[51] किसी भी भाषा को धर्म और लिपि विशेष की कसौटी पर नहीं परखना चाहिए। बाक़ी यही बातें दक्खिनी के अध्ययन से भी जुड़ी हुई हैं क्योंकि दक्खिनी अस्मिता की मूल स्थिति को आधार बना कर ही हम यह बातें कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि दक्खिनी साहित्य की लिपि का प्रश्न एक ऐसी सहज अवधारणा से सुलझ जाता है; और वह यह कि दक्खिनी को लिखने वाले रचनाकार मात्र अपनी जानी हुई लिपि का प्रयोग कर रहे थे। दक्खिनी के मुस्लिम रचनाकार जो अरबी-फ़ारसी लिपि जानते थे, वे उसी में रचनारत थे। जबकि बाद में जब मराठी संतों ने दक्खिनी में कुछ फुटकल रचनाएँ कीं तो उन्होंने अपनी परिचित पुरानी देवनागरी लिपि का प्रयोग किया, जिसमें उनकी मातृभाषा मराठी भी

50. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, प्राक्कथन, पृष्ठ – 07
51. वही, पृष्ठ – 07

लिखी जाती थी। अतः दक्खिन में इस दृष्टि से दक्खिनी भाषा-साहित्य के समक्ष लिपि का प्रश्न एक सामान्य बात थी।

**मध्यकालीन दौर में दक्खिनी की स्थिति**

बहरहाल, जिस कालखण्ड में उत्तर भारत में खड़ीबोली केवल बोलचाल की भाषा थी, ठीक उसी समय दक्षिण भारत में यह दक्खिनी के रूप में वहाँ के राज्यों का संरक्षण पाकर और सूफ़ी संतों की काव्य-भाषा बनकर विपुल साहित्य की रचना का माध्यम बन चुकी थी। "कालांतर में मुसलमानों के दक्षिण पर आक्रमण, विशेषकर 1295 ई. में अलाउद्दीन ख़िलजी के देवगिरि पर आक्रमण से इतिहास का एक नया युग आरंभ होता है और इस प्रदेश में उत्तर से आए मुसलमानों के संपर्क से अनेक सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। मुहम्मद तुग़लक़ द्वारा 1327 ई. में राजनीतिक तथा सामरिक दृष्टि से दौलताबाद को राजधानी बनाए जाने और दिल्ली निवासियों को दौलताबाद जाकर बसने के आदेश से भाषा की दृष्टि से इस क्षेत्र में एक बहुत बड़ा क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ जिससे एक नई भाषा का जन्म हुआ, जिसे 'दक्खिनी' का नाम दिया गया है।"[52] परमानंद पांचाल के मुताबिक़ दक्खिन के इन राज्यों के सुल्तानों ने न केवल दक्खिनी के साहित्यकारों को सम्मान एवं संरक्षण ही प्रदान किया, अपितु इब्राहीम आदि शाह द्वितीय ( सन् 1580-1626 ई. ) और क़ुली क़ुतुबशाह ( सन् 1580-1617 ई. ) जैसे सुल्तानों ने अपनी अनेक ख्याति-प्राप्त दक्खिनी रचनाओं के द्वारा इसके साहित्य-भंडार में अभिवृद्धि भी की।[53] जैसा कि पहले हमने इस संदर्भ में उल्लेख किया था, दक्खिनी मूलतः हिन्दी-उर्दू की पूर्ववर्ती साहित्यिक बोली या साहित्यिक भाषा के रूप में सामने आती है। यही दक्खिनी रूप में विकसित 'खड़ीबोली' जब पुनः उत्तर की ओर लौटी तो आज की परिनिष्ठित हिन्दी और उर्दू का आधार बनी। इसके पीछे ऐतिहासिक कारण बताए जा सकते हैं जिन पर स्पष्ट रूप से विचार किया जाना चाहिए। उदयनारायण तिवारी के

52. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 17
53. देखें – वही, पृष्ठ – 15

शब्दों में, "दक्खिनी हिन्दी ( जिसे दक्खिनी कहना ही उचित होगा, जैसा ऊपर हम कहते आए हैं। ) दक्षिण में ले जाई गई दिल्ली की बोली है जो बाद में अपने साहित्यिक रूप में दिल्ली में आकर फिर प्रतिष्ठित हो गई।"[54] दिल्ली की यह बोली अपने साथ जिस रूप में दक्खिनी का स्वरूप गढ़ती है वह विचारणीय है। यानी इसके स्वरूप और भाषायी संरचना में बहुत बदलाव आ जाता है, इसमें अरबी-फ़ारसी के शब्दों के साथ दक्षिण भारत की भाषाओं का भी समाहार देखने को मिलता है।

यह ध्यान देने की बात है कि अलाउद्दीन और मुहम्मद तुग़लक़ के आक्रमण से पहले भी इस्लाम का प्रभाव दक्षिण भारत पर पड़ रहा था। यह प्रभाव किस रूप में था यहाँ इसकी पड़ताल की जानी चाहिए। संभवतः यह इतिहास का विषय क्षेत्र है फिर भी हमें इस सांस्कृतिक-सामाजिक अंतर्संबंध को समझना होगा। हम जानते हैं कि अरब और भारत के व्यापारिक संबंध तो इस्लाम के उदय से भी पूर्व के हैं। उस व्यापारिक दौर में भारत के दक्षिण तट पर अरब लोगों की बस्तियाँ थीं। जहाँ इस्लाम के उदय के बाद व्यापारियों के साथ इस्लाम के प्रचारक भी सीधे दक्षिण में आते रहे। परमानंद पांचाल इस संबंध में बतलाते हैं कि "इब्ने-बतूता ने अपनी भारत यात्रा में कालिकट, कर्नाटक और मालबार के अनेक स्थानों का उल्लेख किया है जहाँ मुस्लिमों की आबादी थी और अनेक सूफ़ी-संत अपने मतों का प्रचार कर रहे थे। महाराष्ट्र और कर्नाटक के क्षेत्रों में अरबी शब्दों के प्रवेश का भी यही कारण प्रतीत होता है। उत्तर से जो संत और भक्त दक्षिण में मदुराई, रामेश्वरम आदि की तीर्थ-यात्रा पर आया करते थे, वे अपने साथ उत्तर की भाषा और शब्दों को भी लाते थे। इस प्रकार दक्षिण के इस प्रदेश में उत्तर की भाषा के विकास की पृष्ठभूमि पहले से तैयार थी। उत्तर के इन तीर्थ-यात्रियों को यहाँ 'गुसाई' कहा जाता था।"[55] इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास के मध्यकालीन दौर में दक्खिनी भाषा-साहित्य अपने विकास की स्थिति के साथ आगे बढ़ती है और कई मुस्लिम सूफ़ी-संतों की रचनाओं के साथ राजाश्रय का सहारा भी पाती है। अब आगे दक्खिनी

54. परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 15 पर उद्धृत, संदर्भ – उदयनारायण तिवारी, हिन्दी भाषा तथा साहित्य, पृष्ठ – 18
55. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 18

साहित्य में मराठी संतों के योगदान पर बात करेंगे। जिसके अंतर्गत हमें आगे दक्खिनी साहित्य के काल-विभाजन का आधार भी स्पष्ट करना आवश्यक होगा।

**मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ**

दक्खिनी के इस विकास क्रम में और दक्खिनी भाषा-साहित्य के योग में आगे चलकर जिनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही उनमें मराठी संतों का नाम प्रमुखता से आता है। मराठी के अनेक निर्गुण संत कवियों ने तत्कालीन दक्खिनी में भी अपनी रचनाएँ की थीं। जिनका साहित्यिक और भाषायी प्रभाव दक्खिनी के विकास पर लक्षित होता है। परमानंद पांचाल के मुताबिक़ दामोदर पण्डित ( सन् 1287 ई. ), नामदेव ( सन् 1270-1350 ई. ), ज्ञानेश्वर ( सन् 1275-1297 ई. ), गोंदा ( सन् 1300-1351 ई. ), एकनाथ ( सन् 1528-1599 ई. ), तुकाराम ( सन् 1608-1649 ई. ) आदि संत कवियों की दक्खिनी रचनाएँ इस बात का साक्ष्य हैं कि दक्खिन में हिन्दी के इस पूर्ववर्ती रूप दक्खिनी को लोकप्रिय बनाने में केवल इस्लाम के अनुयाइयों और सूफ़ी संतों का ही हाथ नहीं रहा; शैव, वैष्णव, नाथ, जैन और महानुभाव, वरकरी या वारकरी तथा भागवतधर्म जैसे पंथों-सम्प्रदायों के अनुयाइयों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।[56] अब इन मराठी संत कवियों को जिन्होंने दक्खिनी में भी रचनाएँ की हिन्दी अर्थात् खड़ीबोली के कवियों की श्रेणी में रखा जाना कहाँ तक व्यावहारिक है, इस पर विचार किया जाना चाहिए। इन मराठी संतों की मातृभाषा मराठी थी, उन्होंने उस भाषा में भी कविताएँ लिखीं। फिर भी इस सत्य से आँखें नहीं मूँदी जा सकतीं कि मराठी के कुछ संत कवि मातृभाषा के अतिरिक्त जिस भाषा में कविता कर रहे थे उसका स्वरूप भावी दक्खिनी से अधिक भिन्न नहीं था। परमानंद पांचाल के शब्दों में, "उनकी रचनाओं में संबंध-तत्त्व ही दक्खिनी का नहीं था, अर्थ-तत्त्व की दृष्टि से भी उनकी भाषा दक्खिनी के अधिक समीप थी।"[57] मराठी संत कवि नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की रचनाएँ इस संदर्भ में प्रस्तुत की जा सकती हैं। जिसमें

56. देखें – परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 18
57. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 66

दक्खिनी काव्य-रचना की विशिष्ट काव्य-छवियाँ देख सकते हैं। उदाहरणार्थ नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी कविता के कुछ नमूनों को देखिए, जो आगे दिए जा रहे हैं।

नामदेव के पदों में दक्खिनी का प्रचलित रूप सुरक्षित है –

*उत्तम नर तनु पाया रे भाई*
*ग़ाफ़िल क्यों हुआ दिवाने जू*

---

*करीमा रहीमा अल्लाह तू गनी*
*हाजरा हुजूर दरपेस तू मनी*[58]

गोंदा के पदों की विषयवस्तु दृष्टव्य है –

*बादशहा करे जिकीर सच्च हिन्दू फकीर*
*ब्रह्मज्ञान में तीर रणधीर आये हैं*
*'गोंदा' लड़का अजान करे रात दिन ध्यान*
*हुए वो मेहरबान दिया ज्ञान बालक कू*[59]

एकनाथ की रचनाओं में दक्खिनी भाषा का रूप और भी उभरकर सामने आता है, कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

*तुरूक कहे वो बात सही*
*ख़ुदा कू तू ज्यात नहीं*
*बंदे ख़ुदा कू नहीं जुदाई*
*वो कह्या रसुलिल्लाह हज़रत परदे*

---

*अल्ला रखेगा वैसा बी रहना*
*मौला रखेगा वैसा बी रहना*
*कोई दिन सेवक हाथ जोड़े खड़े*
*कोई दिन नजीक न आवे धेड़े*[60]

---

58. देखें – परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 66
59. देखें – श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद, प्रथमावृत्ति – 1954 ई., पृष्ठ – 50
60. देखें – वही, पृष्ठ – 66-67

तुकाराम की दक्खिनी कविता मध्यकालीन भक्ति का स्वर प्रेषित करती है –

*मंत्र तंत्र नहिं मानत साखी ।*
*प्रेम भाव नहिं अन्तर राखी ॥*
*राम कहे त्याके पग हौं लागूँ ।*
*अधिक-जाति कुल-हीन नहिं जानूँ ॥*
*जाने नारायन सो प्रानी मानूँ ॥*
*कहे तुका जीव तन डारूँ वारी ।*
*राम उपासिहूँ बलियारी ॥*[61]

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि यह भाषा ख़्वाजा बंदा नवाज़ गेसू दराज़ की भाषा यानी दक्खिनी के बहुत समीप थी । दक्खिनी साहित्य के विद्वानों के लिए यह विचारणीय विषय है । इसके पीछे परमानंद पांचाल के मुताबिक़ कारण यह है कि उर्दू अदीबों ने दक्खिनी के साहित्य में इन कवियों की रचनाओं को स्थान नहीं दिया है । उन्होंने दक्खिनी का अध्ययन अब तक उर्दू के परिप्रेक्ष्य में ही किया है और वह भी अरबी-फ़ारसी लिपि को ध्यान में रखकर ही ।[62] अतः हमारे सामने दक्खिनी साहित्य को समग्र रूप में देखने की संभावना हमेशा बनी रहती है ।

## दक्खिनी का काल-विभाजन

गार्सां द तासी ने ठेठ दक्खिनी में लिखने वालों की संख्या 200 बताई थी ।[63] बहरहाल, तब तक दक्खिनी साहित्य का कोई क्रमबद्ध अथवा काल-विभाजित रूप में अध्ययन नहीं किया गया था । आगे चलकर विद्वानों ने इस ओर ध्यान दिया और दक्खिनी के साहित्य का काल-विभाजन अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार से किया । परमानंद पांचाल के मुताबिक़ इसमें कोई संदेह नहीं कि उर्दू आलोचना का ध्यान ही सर्वप्रथम इस ओर गया था और उन्होंने ही सर्वप्रथम दक्खिनी साहित्य का काल-विभाजन करने का प्रयास किया था । किन्तु उनकी प्रवृत्ति इसे उर्दू का प्राचीन रूप ( क़दीम उर्दू )

61. देखें – राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, वही, पृष्ठ – 218
62. देखें – वही, पृष्ठ – 67
63. देखें – परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 67 पर उद्धृत, संदर्भ – गार्सां द तासी, खुतबात ( उर्दू रूपांतर ), पृष्ठ – 117

मानकर चलने की ही रही है। हकीम सैयद शमशुल्लाह क़ादरी ने सन् 1910 ई. में एक लेख 'क़दीम शौरा-ए-उर्दू' शीर्षक से लिखा था, जिसमें आदिलशाही, क़ुतुबशाही और मुग़लकाल के दस कवियों का उल्लेख है।[64] इसके बाद भी अनेक विद्वानों ने दक्खिनी का काल-विभाजन प्रस्तुत किया है, जिनमें से कुछ पर यहाँ विचार किया जाना उचित है। दरअसल काल-विभाजन से ही यह स्पष्टता आ पाएगी कि मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं का अध्ययन किस आधार पर और किस समयावधि में किया जाए। बहरहाल, आगे हम दक्खिनी साहित्य के काल-विभाजन के कुछ आधारों पर भी चर्चा करते हुए दक्खिनी के विद्वानों के द्वारा किए गए इसके काल-विभाजन को समझेंगे।

उर्दू के प्रसिद्ध आलोचक नसीरुद्दीन हाशमी ने उर्दू के उद्भव और विकास के अंतर्गत ही दक्खिनी का काल-विभाजन किया है, जो निम्न प्रकार है –

( 1 ) **पहला दौर** – बहमनी काल हिज़री 747 से 900 तक अर्थात् सन् 1347-1495 ई.

( 2 ) **दूसरा दौर** – ( क ) क़ुतुबशाही काल

( ख ) आदिलशाही काल 901-1100 हिज़री

( ग ) निज़ामशाही काल अर्थात्

( घ ) बरीदशाही काल सन् 1496-1689 ई.

( 3 ) **तीसरा दौर** – मुग़ल काल 1101-1136 हिज़री

( 4 ) **चौथा दौर** – आसफ़िया काल 1136-1220 हिज़री

( 5 ) **पाँचवा दौर** – आसफ़िया काल 1220-1301 हिज़री

( 6 ) **छठा दौर** – आसफ़िया 1301-1375 हिज़री

( 7 ) **सातवाँ दौर** – जामिया उसमानिया 1336-1375 हिज़री

( 8 ) **आठवाँ दौर** – आँध्र में उर्दू सन् 1876-1956 ई.[65]

बहरहाल, नसीरुद्दीन हाशमी द्वारा किया गया यह विभाजन उर्दू साहित्य को ध्यान में रखकर किया गया है, जो दक्खिनी साहित्य के अध्ययन के लिए न तो सुविधाजनक ही है और न उपयुक्त ही।

64. देखें – परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 67 पर उद्धृत, संदर्भ – हकीम सैयद शमशुल्लाह क़ादरी, उर्दू-ए-क़दीम, 1963 ई., कराची ( पाकिस्तान ), पृष्ठ – 13

65. देखें – परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 67-68 पर उद्धृत, संदर्भ – नसीरुद्दीन हाशमी, दकन में उर्दू, पृष्ठ – 19

इस संदर्भ में परमानंद पांचाल कहते हैं कि "अंतिम चार दौरों को हम दक्खिनी साहित्य के अंतर्गत नहीं रख सकते; क्योंकि वली दकनी ( 1668-1744 ई. ) के बाद दक्खिनी अपने मूल मार्ग से हट गई थी। मुग़ल-काल तक का अध्ययन ही दक्खिनी साहित्य के लिए उपयोगी है। इसके बाद के सभी कवि दक्खिनी के कवि नहीं थे।"[66] अतः यह काल-विभाजन पर्याप्त नहीं जान पड़ता है।

आगे यह कि मुहीउद्दीन क़ादरी 'ज़ोर' ने भी 'दकनी अदब की तारीख़' में दक्खिनी का काल-विभाजन प्रस्तुत किया है, जो निम्न प्रकार है –

( 1 ) बहमनी काल ( सन् 1350-1525 ई. )
( 2 ) आदिलशाही काल ( सन् 1490-1686 ई. )
( 3 ) क़ुतुबशाही काल ( सन् 1508-1687 ई. )
( 4 ) मुग़ल काल ( सन् 1686-1750 ई. )[67]

परमानंद पांचाल के मुताबिक़ मुहीउद्दीन क़ादरी 'ज़ोर' का यह काल-विभाजन व्यावहारिकता को ध्यान में रखकर अवश्य किया गया है, किन्तु इसमें कुछ असुविधाएँ हैं, जैसे – आदिलशाही काल और क़ुतुबशाही काल दो अलग-अलग काल न होकर प्रायः एक ही कालखण्ड के अंतर्गत दो पृथक-पृथक शासन थे और दक्खिनी का विकास दोनों ही शासनों के अंतर्गत साथ-साथ हो रहा था।[68] इसी प्रकार 'अलीगढ़ तारीख़ अदब उर्दू' में भी दक्खिनी साहित्य का अध्ययन बहमनी दौर, आदिलशाही दौर, क़ुतुबशाही दौर तथा मुग़ल दौर के अंतर्गत ही किया गया है।[69] जो कि पर्याप्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस अध्ययन से हमें दक्खिनी भाषा-साहित्य के काल-विभाजन का ज्ञान नहीं होता है। सही अर्थों में जिस दक्खिनी के काल-विभाजन की हम कोशिश कर रहे हैं वह इससे स्पष्ट नहीं होती है।

---

66. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 68
67. देखें – परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 68 पर उद्धृत, संदर्भ – मुहीउद्दीन क़ादरी 'ज़ोर', दकनी अदब की तारीख़, 1958 ई., पृष्ठ – 05
68. देखें – परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 68
69. देखें – परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 68 पर उद्धृत, संदर्भ – आले अहमद सरूर ( संपादक ), अलीगढ़ तारीख़ अदब उर्दू

इक़बाल अहमद ने अपनी क़िताब 'दक्खिनी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में यह स्पष्ट किया है कि दक्खिनी के काल-विभाजन को सन् 1300 ई. से 1850 ई. तक माना जा सकता है। इसके पीछे उनका तर्क है कि राजनीतिक पटल पर परिवर्तन के साथ साहित्य में भी अनेक मोड़ आए। इक़बाल अहमद की दृष्टि में दक्खिनी साहित्य को निम्न तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है –

1. आदि काल ( सन् 1300-1525 ई. )
   बहमनी शासन काल ( गुलबर्गा )
2. पूर्व मध्य-काल ( सन् 1526-1690 ई. )
   निज़ाम शाही ( अहमद नगर )
   आदिल शाही ( बीजापुर )
   क़ुतुब शाही ( गोलकुंडा )
   बरीद शाही ( बदिर )
3. उत्तर मध्य-काल ( सन् 1691-1850 ई. )
   मुग़ल शासन – लगभग पूरा दक्षिण औरंगाबाद केन्द्र के रूप में
   आसफ़िया शासन – हैदराबाद और सभी प्रवर्ती प्रदेश[70]

हिन्दी विद्वानों में दक्खिनी भाषा और साहित्य पर काम करने का श्रेय सबसे पहले बाबूराम सक्सेना को जाता है, उन्हीं का ध्यान सर्वप्रथम इस ओर गया। उन्होंने अपनी क़िताब 'दक्खिनी हिन्दी' में, जिसका प्रथम संस्करण इलाहाबाद हिन्दुस्तानी एकेडेमी से सन् 1952 ई. में आया था, ख़्वाजा बंदा नवाज़ गेसू दराज़ ( सन् 1318-1422 ई. ) से लेकर आसफ़जाही राज्य तक के दक्खिनी कवियों का संक्षेप में उल्लेख किया है।[71] आगे चलकर राहुल सांकृत्यायन ने ही पहले पहल दक्खिनी साहित्य का काल-विभाजन किया। जिसके पीछे का उनका गहन अध्ययन था। उन्होंने साहित्यकारों की रचनात्मक विषयवस्तु को ध्यान में रखते हुए यह विभाजन किया था। जिस पर हमें विचार करने

70. देखें – इक़बाल अहमद, दक्खिनी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण – 1986 ई., पृष्ठ – 33
71. देखें – बाबूराम सक्सेना, दक्खिनी हिन्दी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, संस्करण – 1952 ई., पृष्ठ – 35-38

की आवश्यकता है। बहरहाल, उन्होंने पूरे दक्खिनी साहित्य को निम्नलिखित तीन कालों में विभक्त किया है –

( 1 ) आदिकाल ( सन् 1400-1500 ई. )

( 2 ) मध्यकाल ( सन् 1500-1657 ई. )

( 3 ) उत्तरकाल ( सन् 1657-1840 ई. )[72]

इस काल-विभाजन पर प्रश्न करते हुए परमानंद पांचाल कहते हैं कि "यह विभाजन केवल काल सूचक ही प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें कवि शैली के विकास की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। बंदा नवाज़ गेसू दराज़ को दक्खिनी का सर्वप्रथम कवि कहा जाना तो ठीक है, किन्तु इसी आदिकाल में मुल्ला वजही ( 1640 ई. ) और बुरहानुद्दीन जानम ( 1544-1583 ई. ) जैसे लब्धप्रतिष्ठ कवियों को कैसे रखा जा सकता है ? इन कवियों की शैली को दक्खिनी हिन्दी की पूर्ण विकसित शैली कहा जा सकता है। दूसरे, इन कवियों के जीवन और कृतित्व को देखते हुए राहुल जी के काल-विभाजन के अनुसार भी उन्हें मध्यकाल में ही स्थान दिया जाना चाहिए था। इसी प्रकार 'नुस्रती' और 'तबई' जैसे कवियों को उत्तरकाल में रखना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता। उत्तरकाल का प्रारंभ 1657 ई. से मानने के पीछे क्या तर्क रहा है, यह समझ में नहीं आता। क्योंकि, 1687 ई. के बाद ही दक्खिन के उन स्वतंत्र राज्यों का अस्तित्त्व समाप्त हुआ था जिनके आश्रय में दक्खिनी काव्य पनप रहा था।"[73] बहरहाल, जो भी हो दक्खिनी के काल-विभाजन को लेकर विद्वानों की धारणाओं में मतभेद देखे जा सकते हैं। फिर भी, हमें एक स्थायी मान्यता पर पहुँचना होगा और दक्खिनी के काल-विभाजन को तार्किक रूप से समझना होगा ताकि दक्खिनी में भी रचनाएँ करने वाले मराठी संतों का हम उसी काल-विभाजन के आधार पर स्पष्ट मूल्यांकन कर सकें।

---

72. देखें – राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, वही, कवि-सूची

73. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 69

धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य' में भी दक्खिनी साहित्य का काल-विभाजन किया गया है। उनके काल-विभाजन के आधार को दक्खिन में मुस्लिम शासन-व्यवस्था के साथ समझा जा सकता है, जो इस प्रकार से है –

( 1 ) बहमनी युग ( सन् 1347-1524 ई. )
( 2 ) आदिलशाही क़ुतुबशाही युग ( सन् 1490-1687 ई. )
( 3 ) मुग़ल युग ( सन् 1687-1722 ई. )[74]

दक्खिनी के प्रसिद्ध विद्वान श्रीराम शर्मा ने अपने ग्रंथ 'दक्खिनी का पद्य और गद्य' के अतिरिक्त अपने दूसरे ग्रंथ 'दक्खिनी हिन्दी का साहित्य' में दक्खिनी साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन किया है। उन्होंने पूरे दक्खिनी साहित्य का विभाजन तीन खण्डों में किया है –

( 1 ) प्रथम खण्ड ( सन् 1300-1600 ई. )
( 2 ) द्वितीय खण्ड ( सन् 1600-1675 ई. )
( 3 ) तृतीय खण्ड ( सन् 1700-1850 ई. )[75]

प्रथम खण्ड में श्रीराम शर्मा ने निर्गुण-भक्ति के अंतर्गत गोरखनाथ, जनाबाई आदि को भी सम्मिलित किया है। किन्तु इस प्रसंग में अभी शोध की संभावना है कि क्या इन कवियों को दक्खिनी का कवि माना जाए। द्वितीय और तृतीय खण्ड के बीच 25 वर्षों के विषय में श्रीराम शर्मा का काल-विभाजन मौन है। पता नहीं, यह समय कैसे अछूता रह गया। अतः पहले पहल हमें दक्खिनी साहित्य का काल-विभाजन स्थिर करने से पूर्व काल-विभाजन का कोई युक्तिसंगत आधार मानना होगा।

परमानंद पांचाल इस संदर्भ में कहते हैं कि "दक्खिनी हिन्दी साहित्य के क्रमबद्ध और समग्र अध्ययन के लिए साहित्य के उत्तरोत्तर विकास के क्रम और उसकी शैली में हुए परिवर्तनों को ही मुख्य रूप से काल-विभाजन का आधार माना जा सकता है।"[76] बहरहाल, विकास के इस क्रम में उन

74. देखें – परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 69 पर उद्धृत, संदर्भ – धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड ( माता बदल जायसवाल, हिन्दवी साहित्य ), पृष्ठ – 560
75. देखें – श्रीराम शर्मा, दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, दक्षिण प्रकाशन, हैदराबाद, अनुक्रम, संस्करण – 1972 ई.
76. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 70

राजवंशों और शासकों का भी कुछ कम योगदान नहीं रहा है जिनके संरक्षण में दक्खिनी साहित्य समृद्ध हुआ था। इसी बात के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए परमानंद पांचाल कहते हैं कि "यह स्वीकार करना होगा कि दक्खिनी हिन्दी जिस भू-भाग में विकसित हो रही थी, वह अन्य भाषाओं का क्षेत्र था और उनका साहित्य पहले से ही पर्याप्त विकसित था। दूसरे उस क्षेत्र के मूल निवासियों ने इस भाषा में साहित्य-रचना में कोई रुचि भी नहीं ली थी। किन्तु कालांतर में यह स्थिति बदल गई और दक्खिनी हिन्दी में बहुत अधिक जन-साहित्य भी रचा गया। अतः काल-विभाजन के लिए जहाँ साहित्य के विकास और शैली को आधार बनाया गया है, वहाँ उन राजवंशों को भी दृष्टि में रखना होगा जिनके संरक्षण और आश्रय में यह साहित्य पनपा था।"[77] वास्तव में दक्खिनी का एक बृहत् कालखण्ड रहा है इस परिप्रेक्ष्य से उसके काल-विभाजन को भी हमें उसी के अनुकूल समझना होगा।

दक्खिनी साहित्य का आरंभ प्रमुख रूप से दक्खिन में मुस्लिम राज्यों की स्थापना के बाद ही शुरू हुआ था। इसलिए बहमनी राज्य की स्थापना के बाद से ही अर्थात् लगभग सन् 1300 ई. से दक्खिनी का आरंभिक काल मान सकते हैं। बहमनी काल के बाद से दक्खिनी का विकास कई राज्यों के अंतर्गत हो रहा था, जिनमें प्रमुख थे – आदिलशाही शासन ( सन् 1490-1686 ई. ), क़ुतुबशाही शासन ( सन् 1512-1687 ई. ), बरीदशाही शासन ( सन् 1487-1611 ई. ) और निज़ामशाही शासन ( सन् 1490-1633 ई. ); इस प्रकार हम इन सारे कालखण्ड को मध्यकाल के अंतर्गत रख सकते हैं। क़ुतुबशाही काल का अवसान सन् 1687 ई. में और आदिलशाही काल की समाप्ति सन् 1686 ई. में हो गई थी, जिसके बाद यह क्षेत्र मुग़ल शासन के अधीन आ गया था। मुग़ल शासन काल में दक्खिनी साहित्य की कोई विशेष उन्नति नहीं देखी जाती और वली दकनी ( सन् 1668-1741 ई. ) के बाद एक प्रकार से दक्खिनी साहित्य में रचना-क्रम महत्त्वहीन सा हो गया था। अतः इस कालखण्ड को उत्तरकाल मान सकते हैं, जिसका अंतिम प्रमुख कवि शाह तुराब ( मृत्यु सन् 1840 ई. ) था। जिसके बाद दक्खिनी साहित्य में कोई बड़ा साहित्यकार दिखाई नहीं पड़ता।

---

77. वही, पृष्ठ – 70

इसके बाद दक्खिनी में लिखने वाले रचनाकार राजनीतिक परिस्थितियों के कारण मद्रास ( अब चेन्नई, तमिलनाडु ) और केरल आदि राज्यों में भी पहुँच गए और वहाँ रहकर कविता करने लगे। ऐसे रचनाकारों की पहचान अभी अध्ययन के संभावना क्षेत्र में है क्योंकि आज हम यह भी देखते हैं कि दक्खिनी साहित्य की रचनाएँ केरल, तमिलनाडु, पांडिचेरी और त्रिचनापल्ली में भी मिलती हैं, जिनके अध्ययन की आवश्यकता है।[78] बहरहाल, इस बात को दक्खिनी के अध्येताओं को प्रमुखता से समझना चाहिए कि दक्खिनी साहित्य के किसी भी कालखण्ड को समग्र रूप में जानने के लिए उसके विकास-क्रम के साथ उस दौर के शासन और इतिहास सम्मत तथ्यों की बात करनी होगी जिसकी चर्चा ऊपर की गई है।

**दक्खिनी का काल-विभाजन और मराठी संत**

'मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : एक सर्वेक्षण' की दृष्टि से नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं को विभिन्न विद्वानों के मतानुसार परखते हुए, सुविधा की दृष्टि से हम समग्र दक्खिनी साहित्य को निम्नलिखित तीन कालों में विभक्त कर सकते हैं –

( 1 ) **आरंभिक काल** : 13वीं से 15वीं शताब्दी तक

क. नामदेव – सन् 1270-1350 ई.

ख. गोंदा – सन् 1300-1351 ई.

( 2 ) **मध्यकाल** : 15वीं से 17वीं शताब्दी तक

क. एकनाथ – सन् 1528-1599 ई.

( 3 ) **उत्तरकाल** : 17वीं से 19वीं शताब्दी तक

क. तुकाराम – सन् 1608-1649 ई.

**आरंभिक काल**

( 13वीं से 15वीं शताब्दी तक )

बहमनी शासन की स्थापना के साथ लगभग 13वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से दक्खिनी में साहित्य-रचना आरंभ हो गई थी। इसी कालखण्ड में नामदेव और गोंदा जैसे मराठी संत कवि भी हुए

78. देखें – परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 70-71 पर उद्धृत, संदर्भ – तारीख़ फ़रिश्ता – ब्रिग्स का अनुवाद ( जिल्द - 3 ), पृष्ठ – 80

जो अपनी मातृभाषा के साथ दक्खिनी से प्रभावित भाषा में भी कविता कर रहे थे, जिसमें अरबी-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग भी लक्षित हो रहा था। बहरहाल, इनकी दक्खिनी अन्य दक्खिनी साहित्यकारों से इस रूप में भिन्न थी कि ये पुरानी देवनागरी लिपि में अपनी रचनाएँ लिखते थे जबकि दूसरे दक्खिनी साहित्यकार अरबी-फ़ारसी लिपि का प्रयोग करते थे। दरअसल दोनों पक्ष जिस लिपि से परिचित थे उसी में रचनाएँ कर रहे थे; यही कहना उचित होगा। आगे चलकर अधिकांश उर्दू के अध्येताओं और आलोचकों ने अरबी-फ़ारसी में लिखी गई रचनाओं को ही दक्खिनी के अंतर्गत शामिल किया। किन्तु इस दिशा में बाबूराम सक्सेना, श्रीराम शर्मा, राहुल सांकृत्यायन, विनयमोहन शर्मा, परमानंद पांचाल आदि हिन्दी विद्वानों के शोध से आज पता चलता है कि इन मराठी संतों को, जो उस दौर में दक्खिनी में भी रचनाएँ लिख रहे थे, दक्खिनी साहित्यकारों के अंतर्गत शामिल किए बिना दक्खिनी को समग्रता में नहीं समझा जा सकता। दक्खिनी साहित्य में 'मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : एक सर्वेक्षण' का यह तथ्य-बोध भी हमारी इसी व्यावहारिकता के साथ संबद्ध है।

ख़्वाजा बंदा नवाज़ गेसू दराज़ जैसे कुछ सूफ़ी संतों ने भी इसी दौर में रचनाएँ की थीं। परमानंद पांचाल बतलाते हैं कि "बहमनी वंश के 17 सुल्तानों ने लगभग 179 वर्ष दकन में राज्य किया। इस राजवंश के संस्थापक अलाउद्दीन बहमन शाह ने साहित्य और संस्कृति के विकास के लिए अनेक कार्य किए थे। इसके दरबार में मौलाना लुत्फ़, अल्लाह, मुल्ला इसहाक सरहिन्द तथा रजीउद्दीन जगाजोत जैसे प्रसिद्ध विद्वान एकत्रित थे। सुल्तान अपनी प्रजा की सुख-समृद्धि का विशेष ध्यान रखते थे। राजभक्त तथा समस्त धनी-निर्धन जनता की समृद्धि को ही जीवन की चरम उपासना मानने वाला महान इतिहासज्ञ एवं राजनीतिज्ञ प्रधानमंत्री, महमूद गावां इसी बहमनी शासन में हुआ था। बीदर में उसने एक बहुत बड़ा मदरसा बनवाया था, जिसमें 3000 पुस्तकों का संग्रह था। इसी वंश का एक शासक 'फ़ीरोज़शाह' भी था, जो स्वयं कवि था। वह विद्वानों का बड़ा आदर करता था और स्वयं भी कई भाषाएँ जानता था। ख़्वाजा बंदा नवाज गेसू दराज़ इन्हीं के शासन काल में गुलबर्गा पधारे थे। बहमनी शासन काल में सरकारी कार्यालयों की भाषा दक्खिनी ही थी। सूफ़ी संतों को

धर्म-प्रचार की पूर्ण स्वतंत्रता थी। बहमनी युग में इन्हीं सूफ़ी संतों ने धर्म-प्रचार के लिए दक्खिनी में रचनाएँ कीं।"[79]

बहरहाल, अब आरंभिक काल ( 13वीं से 15वीं शताब्दी तक ) के अंतर्गत आने वाले अपने दो मराठी संतों नामदेव और गोंदा पर आगे चर्चा करते हैं। ताकि जाना जा सके कि दक्खिनी भाषा-साहित्य की रचनाओं के योगदान में इन दोनों संतों की क्या परिचयात्मक भूमिका रही है। इससे आरंभिक काल के दौरान मराठी संतों का अवदान भी स्पष्ट होगा।

वास्तव में दक्खिनी साहित्य का मर्म जानने का वास्तविक सारांश भी इन्हीं तार्किक पक्षों में है कि किसी भी कालखण्ड में मराठी संतों की कितनी दक्खिनी रचनाएँ हमें उपलब्ध होती हैं और उनकी विषयवस्तु क्या है।

## नामदेव

( सन् 1270 ई. से 1350 ई. तक )

नामदेव के एक अभंग के अनुसार कार्तिक शुक्ल एकादशी, शके संवत् 1192 ( लगभग सन् 1270 ई. ) को नामदेव का जन्म हुआ।[80] बहरहाल, नामदेव का जन्म दामासेट ( दामाशेटी ) दर्जी ( तत्कालीन शिंपी या छींपी जाति ) के घर गोनाबाई ( गोणाई ) के गर्भ से पंढरपुर में माना जाता है।[81] नामदेव का विवाह राजाबाई नामक स्त्री से हुआ जिनसे इन्हें चार पुत्र नारायण, महादेव, गोविन्द और विट्ठल प्राप्त हुए। कुछ विद्वान इनके तीन ही पुत्रों की बात बतलाते हैं जिनके नाम नारा, महादा और

---

79. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 71-72

80. देखें – गोविन्द रजनीश ( संपादन ), नामदेव रचनावली, अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली, पेपरबैक संस्करण – 2006 ई., पृष्ठ – 17 पर उद्धृत अभंग –

*शुक्ला एकादशी कार्तिकी रविवार, प्रमोद संवत्सर शालिवाहन शके।*
*प्रसावली माता मजमल मूत्री, लेव्हाँ जिन्हेवरी लिहिलें देवें॥*

– नामदेव

81. देखें – गणेश प्रसाद द्विवेदी ( संपादक ), परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संशोधित तथा परिवर्द्धित, हिन्दी संतकाव्य-संग्रह, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण – 1974 ई., पृष्ठ – 332 ( नामदेव का जन्म सतारा जिले के अंतर्गत किसी नरसी वमनी गाँव में हुआ था। पंढरपुर में इनके पिता उस घटना के अनंतर किसी समय जाकर बसे थे। – परशुराम चतुर्वेदी )

बिठा थे ।[82] इनकी एकमात्र पुत्री का नाम किंबाबाई था । कुछ विद्वान इनकी पुत्री का नाम गोंदा बतलाते हैं । जिन परिस्थितियों में नामदेव का पारिवारिक और स्वयं का जीवन बीता वह अत्यंत प्रतिकूल था । यह भक्तिकाल का अंतर्विरोध ही है कि दर्जी नामदेव से भक्त नामदेव को अलग कर दिया गया, जबकि उनके काव्य की अंतर्वस्तु में ऐसा नहीं है । नामदेव जी का जन्म महाराष्ट्र के दरजी-वंश में हुआ था जैसा कि ऊपर हम उल्लेख करते आए हैं । आगे यह बताना आवश्यक है कि रामानंद की तरह भक्ति को ये भी दक्षिण से उत्तर भारत में ले आए थे । इन्होंने उत्तर भारत के कई प्रदेशों की यात्रा की लेकिन जब नामदेव जीवन के अंतिम पड़ाव पर आए तो पंढरपुर में विट्ठल के चरणों में ही समाधि लेने की सोची । अंततः आषाढ़वदी त्रयोदशी शनिवार शालिवाह शक 1272 ( संवत् 1407 ) अर्थात् लगभग सन् 1350 ई. को पंढरपुर में समाधि ले ली ।[83] कहते हैं, विष्णुस्वामी, वोहरदास, जल्लो, लड्डा प्रभृति शिष्यों ने उनका समाधि-मंदिर तैयार कराया था ।[84] इनकी समाधि पंढरपुर में बनाई गई । ये ज्ञानदेव यानी ज्ञानेश्वर के समकालीन थे । यही नहीं जिस संत परंपरा से हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल स्थायी गौरव पाता है उसमें भी दक्खिनी साहित्य के मूल्यांकन के प्रश्नों से टकराने के बाद यह बात ही दृष्टिगोचर होती है कि नामदेव निर्गुण परंपरा के अग्रदूत थे । नामदेव की आध्यात्मिक मान्यताएँ महानुभाव, वारकरी और भागवतधर्म से जुड़ी हुई थीं । बहरहाल, इन बातों पर विस्तार से चर्चा की आवश्यकता है । रामचन्द्र शुक्ल के मुताबिक़ संत भक्तों में नामदेव का नाम सबसे पहले आता है । इनके दक्खिनी के पदों की विशेषता यह थी कि कुछ तो सगुणोपासना से संबंध रखते हैं कुछ निर्गुणोपासना से । इसके पीछे का कारण उनके समय की परिस्थिति को देखना चाहिए तब गोरखपंथी योगियों का देश में बहुत प्रभाव था, नामदेव के ही समय में प्रसिद्ध ज्ञानयोगी ज्ञानदेव हुए हैं जिन्होंने अपने को गोरख की शिष्य-परंपरा में बताया है । नामदेव सीधे-सादे सगुण भक्ति मार्ग पर चले जा रहे थे, पर पीछे उस नाथपंथ के प्रभाव के भीतर भी ये लाए गए, जो अंतर्मुख साधना द्वारा

82. देखें – इक़बाल अहमद, दक्खिनी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वही, पृष्ठ – 86
83. देखें – गोविन्द रजनीश ( संपादन ), नामदेव रचनावली, वही, पृष्ठ – 23
84. देखें – हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, संस्करण – 2012 ई., पृष्ठ – 60

सर्वव्यापक निर्गुणब्रह्म के साक्षात्कार को ही मोक्ष का मार्ग मानता था। लाने वाले थे ज्ञानदेव। कथा यह है कि एक बार ज्ञानदेव इन्हें साथ लेकर तीर्थयात्रा को निकले, मार्ग में ये अपने प्रिय विग्रह भगवान विठोबा के वियोग में व्याकुल रहा करते थे। ज्ञानदेव इन्हें बराबर समझाते थे कि भगवान क्या एक ही जगह है; वे तो सर्वत्र हैं, सर्वव्यापक हैं। यह मोह छोड़ो। तुम्हारी भक्ति अभी एकांगी है, जब तक निर्गुण पक्ष की भी अनुभूति तुम्हें न होगी, तब तक तुम पक्के न होगे। ज्ञानदेव की बहन मुक्ताबाई के कहने पर एक दिन संतपरीक्षा हुई। जिस गाँव में यह संत मंडली उतरी थी, उसमें एक कुम्हार ( जिसका नाम गोरा कुम्हार बताया जाता है। ) रहता था। मंडली के सब संत चुपचाप बैठ गए। कुम्हार घड़ा पीटने का पिटना लेकर सबके सिर पर जमाने लगा। चोट पर चोट खाकर भी कोई विचलित न हुआ। पर जब नामदेव की ओर बढ़ा तब वे बिगड़ खड़े हुए। इस पर वह कुम्हार बोला 'नामदेव को छोड़ और सब घड़े पक्के हैं।' बेचारे नामदेव कच्चे घड़े ठहराए गए। रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि इस कथा से स्पष्ट लक्षित हो जाता है कि नामदेव को नाथपंथ के योगमार्ग की ओर प्रवृत्त करने के लिए ज्ञानदेव की ओर से तरह-तरह के प्रयत्न होते रहे। आगे अपनी बात कहते हुए रामचन्द्र शुक्ल मानते हैं कि नामदेव किसी गुरु से दीक्षा लेकर सगुण भक्ति में प्रवृत्त नहीं हुए थे बल्कि अपने ही हृदय की स्वाभाविक प्रेरणा से हुए थे। ज्ञानदेव बराबर उन्हें 'बिनु गुरु होइ न ज्ञान' समझाते आते थे। गुरु के अभाव के कारण किस प्रकार नामदेव में परमात्मा की सर्वव्यापकता का उदार भाव नहीं जम पाया था और भेदभाव बना था, इस पर भी एक कथा चली आती है। कहते हैं कि एक दिन स्वयं भगवान विठोबा एक मुसलमान फ़क़ीर का रूप धरकर नामदेव के सामने आए। नामदेव ने उन्हें नहीं पहचाना। तब उनसे कहा गया कि वे तो परब्रह्म भगवान ही थे। अंत में बेचारे नामदेव ने नागनाथ नामक शिव के स्थान पर जाकर बिसोबा खेचर या खेचरनाथ नामक एकनाथपंथी कनफटे से दीक्षा ली।[85] इसके संबंध में नामदेव के ये वचन दृष्टव्य हैं, जिसमें नामदेव ने अपने गुरु से दीक्षा लेने की बात का उल्लेख किया है –

85. देखें – रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण – 2010 ई., पृष्ठ – 43-44

*मन मेरी सुई, तन मेरा धागा । खेचरजी के चरण पर नामा सिंपी लागा ।*[86]

---

*सुफल जन्म मोको गुरु कीना । दुख बिसार सुख अंतर दीना ॥*
*ज्ञान दान मोको गुरु दीना । राम नाम बिन जीवन हीना ॥*[87]

---

*किस हूँ पूजूँ दूजा नजर न आई ।*
*एके पाथर किज्जे भाव । दूजे पाथर धरिए पाव ॥*
*जो वो देव तो हम बी देव । कहै नामदेव हम हरि की सेव ॥*[88]

नामदेव की गुरु परंपरा इस प्रकार बतलाई जाती है –

क. आदिनाथ
1. उमा
2. मत्स्येन्द्रनाथ
2.1 गोरखनाथ
2.1.1 गैनीनाथ
2.1.1.1 निवृत्तिनाथ
2.1.1.1.1 ज्ञाननाथ
2.1.1.1.1.1 बिसोबा खेचर
2.1.1.1.1.1.1 नामदेव
2.1.1.1.2 सोपान देव
2.1.1.1.3 मुक्ताबाई
3. जलन्दर

नामदेव को गुरु परंपरा में आने की सीख निर्गुण भक्ति में आने से हुई थी । नामदेव की गुरु परंपरा को इक़बाल अहमद ने इस प्रकार बताया है : आदिनाथ के तीन शिष्य हुए – उमा, मत्स्येन्द्रनाथ और जलन्दर; मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य हुए गोरखनाथ; गोरखनाथ के शिष्य हुए गैनीनाथ; गैनीनाथ के

86. देखें – वही, पृष्ठ – 44
87. देखें – वही, पृष्ठ – 44
88. देखें – वही, पृष्ठ – 44

शिष्य हुए निवृत्तिनाथ; निवृत्तिनाथ के तीन शिष्य हुए – ज्ञाननाथ, सोपान देव और मुक्ताबाई; ज्ञाननाथ के शिष्य हुए बिसोबा खेचर और बिसोबा खेचर के शिष्य हुए नामदेव।[89]

रामचन्द्र शुक्ल के मुताबिक़ महाराष्ट्र देश के प्रसिद्ध संत भक्त नामदेव ने हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्तिमार्ग का भी आभास दिया था।[90] इक़बाल अहमद के मुताबिक़ नामदेव ने सगुण भक्ति के लिए किसी भी गुरु से दीक्षा नहीं ली थी बल्कि हृदय की स्वाभाविक प्रेरणा से सगुण भक्त बने थे। बाद में ज्ञानदेव या ज्ञानेश्वर के प्रभाव में जब नामदेव निर्गुण भक्ति में आए तो उन्होंने इन्हें किसी गुरु से दीक्षित होने की सलाह दी और कहा कि बिना किसी गुरु के वास्तविक ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। अंत में नामदेव ने बिसोबा खेचर नामक नाथ पंथी संत से दीक्षा ली।[91] जिसका उल्लेख हम ऊपर भी करते आए हैं। इस संदर्भ में नामदेव के इष्ट 'सगुणोपासना' और 'निर्गुण वाणी' के कुछ दक्खिनी काव्य के उदाहरण दृष्टव्य हैं –

नामदेव के सगुणोपासना के कुछ पद –

*अंबरीष को दियो अभय पद, राज विभीषण अधिक करयो।*
*नव निधि ठाकुर दई सुदामहिं, ध्रुव जो अटल अजहूँ न टरयो।*
*भगत हेत मारयो हरिनाकसु, नृसिंह रूप ह्वै देय धरयो।*
*नामा कहै भगति बस केसव, अजहूँ बलि के द्वार खरो॥*[92]

---

*दसरथरायनंद राजा मेरा रामचंद। प्रणवै नामा तत्व रस अमृत पीजै॥*[93]

---

*धनि धनि मेघा रोमावली, धनि धनि कृष्ण ओढ़े कावँली।*
*धनि धनि तू माता देवकी, जिह गृह रमैया कँवलापती॥*
*धनि धनि बनखँड वृंदाबना, जहँ खेलै श्रीनारायना।*
*बेनु बजावै, गोधन चारै, नामे का स्वामि आनँद करै॥*[94]

---

89. देखें – इक़बाल अहमद, दक्खिनी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वही, पृष्ठ – 87
90. देखें – रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वही, पृष्ठ – 41
91. देखें – इक़बाल अहमद, दक्खिनी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वही, पृष्ठ – 87
92. देखें – वही, पृष्ठ – 44
93. देखें – वही, पृष्ठ – 44
94. देखें – वही, पृष्ठ – 44

नामदेव की 'निर्गुण वाणी' –

*माइ न होती, बाप न होते, कर्म्म न होता काया ।*
*हम नहिं होते, तुम नहिं होते, कौन कहाँ ते आया ॥*
*चंद न होता, सूर न होता, पानी पवन मिलाया ।*
*शास्त्र न होता, वेद न होता, करम कहाँ ते आया ॥*[95]

---

*पांडे तुम्हरी गायत्री लोधे का खेत खाती थी ।*
*लैकरि ठेंगा टँगरी तोरी लंगत लंगत आती थी ।*
*पांडे तुम्हरा महादेव धौल बलद चढ़ा आवत देखा था ।*
*पांडे तुम्हरा रामचंद सो भी आवत देखा था ॥*
*रावन सेंती सरबर होई, घर की जोय गँवाई थी ।*
*हिंदू अंधा तुरुकौ काना, दुवौ ते ज्ञानी सयाना ॥*
*हिंदू पूजै देहरा, मुसलमान मसीद ।*
*नामा सोई सेविया जहँ देहरा न मसीद ॥*[96]

इस प्रकार नामदेव की दक्खिनी साहित्य में भूमिका की पृष्ठभूमि तैयार होती है । नामदेव की दक्खिनी रचनाओं पर अंतर्वस्तु की दृष्टि से शोध के दूसरे अध्याय 'मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : अंतर्वस्तु' के अंतर्गत विस्तार से विचार किया जाएगा । बहरहाल, नामदेव की दक्खिनी रचनाओं के सर्वेक्षण से प्राप्त ग्रन्थ निम्नलिखित हैं –

1. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद, प्रथमावृत्ति – 1954 ई. में संकलित नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. नामदेव ( पृष्ठ – 14 से 44 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः दक्खिनी साहित्यकारों और उनकी दक्खिनी रचनाओं का संकलन है । इसमें श्रीराम शर्मा के साथ-साथ कई अन्य विद्वानों की भी सम्मति शामिल है ।

95. देखें – वही, पृष्ठ – 44-45
96. देखें – वही, पृष्ठ – 45

साथ ही, इसमें नामदेव का संक्षिप्त परिचय तथा उनकी दक्खिनी रचनाओं को संकलित किया गया है।

2. परमानंद पांचाल ( चयन एवं संपादन ), दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, साहित्य अकादेमी, प्रथम संस्करण – 2008 ई. में संकलित नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. नामदेव ( पृष्ठ – 111 से 122 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः दक्खिनी साहित्यकारों और उनकी दक्खिनी रचनाओं का संकलन है। परमानंद पांचाल ने इस ग्रंथ में दक्खिनी साहित्य की 'दक्खिनी हिन्दी काव्य का ऐतिहासिक संदर्भ' शीर्षक से एक बृहत् भूमिका भी लिखी है । जिसमें दक्खिनी के काल-विभाजन पर चर्चा की गई है। साथ ही, इसमें दक्खिनी के पहले रचनाकार सूफ़ी कवि ख़्वाजा बंदा नवाज़ गेसू दराज़ और नामदेव का संक्षिप्त परिचय तथा उनकी दक्खिनी रचनाओं को संकलित किया गया है।

3. गणेश प्रसाद द्विवेदी ( संपादक ), परशुराम चतुर्वेदी द्वारा संशोधित तथा परिवर्द्धित, हिन्दी संतकाव्य-संग्रह, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, तृतीय संस्करण – 1974 ई. में संकलित नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. नामदेव ( पृष्ठ – 333 से 334 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः संत साहित्यकारों और उनकी रचनाओं का संकलन है। इसमें नामदेव के भी कुछ हिन्दी या दक्खिनी पद संकलित हैं।

4. गोविन्द रजनीश ( संपादन ), नामदेव रचनावली, अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली, पेपरबैक संस्करण – 2006 ई. में संकलित नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. नामदेव ( पृष्ठ – 53 से 146 तक )

**ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः नामदेव जी की एक रचनावली है। इसमें इनके 264 पद और 17 साखियाँ संकलित हैं। इस रचनावली की भाषा मराठी न होकर अधिकांशत: हिन्दी या दक्खिनी के निकट है।

5. कृ. गो. वानखड़े गुरुजी ( लेखक तथा संकलक ), संत नामदेव तथा उनका हिन्दी साहित्य, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, संस्करण – 1970 ई. में संकलित नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. नामदेव ( पृष्ठ – 97 से 183 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः नामदेव जी के जीवन और कृतित्व पर आलोचनात्मक हस्तक्षेप है। इसमें इनकी मराठी और दक्खिनी रचनाओं के अधिकांश अभंग-पद संकलित हैं।

6. चन्द्रा सदायत और लालचंद राम ( चयन एवं संपादन ), निर्भय निर्गुण ( संत काव्य संग्रह ), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, प्रथम संस्करण – 2009 ई. में संकलित नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. नामदेव ( पृष्ठ – 02 से 06 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः निर्गुण संत कवियों का संकलन है। जिसमें नामदेव के भी पाँच दक्खिनी पद शामिल हैं।

7. प्रभाकर माचवे, संत नामदेव : परिचय एवं कविताएँ, हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2010 ई. में संकलित नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. नामदेव ( पृष्ठ – 72 से 124 तक )

**ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः नामदेव जी के जीवन और कृतित्व पर आलोचनात्मक हस्तक्षेप है। इसमें इनकी हिन्दुस्तानी या दक्खिनी कविता के कुछ पद संकलित है।

8. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संस्करण – 1957 ई. में संकलित नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. नामदेव ( पृष्ठ – 239 से 264 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मराठी संतों के जीवन और कृतित्व पर आलोचनात्मक हस्तक्षेप है। इसमें नामदेव की दक्खिनी रचनाओं के साहित्यिक विश्लेषण के साथ उनकी दक्खिनी रचनाओं को भी संकलित किया गया है।

9. परशुराम चतुर्वेदी ( संपादक ), संत काव्य, क़िताब महल, इलाहाबाद, संस्करण – 1956 ई. में संकलित नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. नामदेव ( पृष्ठ – 80 से 85 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः संत साहित्यकारों और उनकी रचनाओं का संकलन है। इसमें नामदेव के भी कुछ हिन्दी या दक्खिनी पद संकलित हैं।

## गोंदा

( सन् 1300 ई. से 1351 ई. तक )

गोंदा के जीवन के विषय में स्पष्ट जानकारी का अभाव है। विद्वानों ने इस संदर्भ में अपने अपर्याप्त मत दिए हैं जिनमें भ्रांतियाँ मालूम होती हैं। फिर भी, यह स्पष्ट है कि मराठी संत परंपरा में गोंदा हुए हैं जिन्होंने मराठी के साथ दक्खिनी में रचनाएँ की हैं। कुछ लेखकों ने इन्हें गोंदा बाई लिखा है।[97] ऐसी ही एक धारणा के अनुसार परमानंद पांचाल लिखते हैं कि "गोंदा संत नामदेव के पुत्र थे। कहा जाता है कि नामदेव ने अपने पुत्र तथा पुत्रियों के साथ एक ही समय में पंडरपुर ( पंढरपुर ) में

97. देखें – परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 144

समाधि ली थी। इनका निर्वाण ( आश्विन कृष्ण 13 संवत् 1407 ) 1351 ई. है। ये मराठी के कवि थे और इन्होंने दक्खिनी हिन्दी में भी कुछ रचनाएँ की थीं। कुछ लोग इन्हें नामदेव की पुत्री गोंदा बाई कहते हैं।"[98] श्रीराम शर्मा के मुताबिक़ एक कथा यह भी चली आती है कि नामदेव की पत्नी अपने पति की भक्ति के कारण उद्विग्न रहती थी किन्तु नामदेव के पुत्र अपने भक्त पिता का बहुत आदर करते थे। गोंदा अपने पिता को बहुत मानते थे।[99]

गोंदा ने अपने दक्खिनी के पदों में पिता नामदेव के चमत्कारों का उल्लेख किया है। इस संदर्भ में गोंदा की दक्खिनी कविता का एक अंश दृष्टव्य है, जिसमें मुसलमान बादशाह के कहने पर नामदेव द्वारा मरी गाय को विट्ठल दीनानाथ की कृपा से जी उठने की बात गोंदा ने कही है –

*नामा लड़का अजान बहुत हुआ हयरान*
*अबी छोड़ेगा जान मुसलमान बेकदर*
*अकस्मात हुई बात उठ कर बैठे दीनानाथ*
*चल दीया उसी वक़्त मैं दीनानाथ आया हूँ*
*बिठू कहे नामदेव उस गाय कू हात लगाव*
*जान उसकी खुजाव जल्दी जाव गाय उठेगी*
*उठ कर खड़ी रहे गाय हर हर बोले बम्मन राय*[100]

गोंदा की दक्खिनी कविता के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बात उल्लेखनीय है कि अपने एक दक्खिनी पद में गोंदा ने मंगलाचरण में गणेश स्तुति की है। वह पद अवश्य ही दृष्टव्य है –

*गजानन गौरी सूत लाल अंग पर बभूत*
*तेरे मुख वचनामृत उसे जमदूत भागात है*
*विद्याभरी दन्दुल पेट उस पर साँप की लपेट*
*विघन करत है चपेट पकड़ फेट काल की*[101]

98. परमानंद पांचाल, वही, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, पृष्ठ – 591
99. देखें – श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 479
100. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 48
101. वही, पृष्ठ – 45

यह दृष्टव्य है कि अपनी दक्खिनी कविताओं में ये अपना नामोल्लेख 'गोंदा' नाम से करते हैं, जिससे पता चलता है कि गोंदा वास्तव में नामदेव के पुत्र ही थे, इस संदर्भ में गोंदा की दक्खिनी रचना से एक पदांश देखिए –

*बादशाह करे जिकीर सच्च हिन्दू फकीर*
*ब्रह्मज्ञान में तीर रणधीर आए हैं*
*'गोंदा' लड़का अजान करे रात दिन ध्यान*
*हुए वो मेहरबान दिया ज्ञान बालक कू*[102]

इस प्रकार गोंदा की दक्खिनी साहित्य में भूमिका की पृष्ठभूमि तैयार होती है। गोंदा की दक्खिनी रचनाओं पर अंतर्वस्तु की दृष्टि से शोध के दूसरे अध्याय 'मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : अंतर्वस्तु' के अंतर्गत विस्तार से विचार किया जाएगा। बहरहाल, गोंदा की दक्खिनी रचनाओं के सर्वेक्षण से प्राप्त ग्रन्थ निम्नलिखित हैं –

1. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद, प्रथमावृत्ति – 1954 ई. में संकलित गोंदा की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   ख. गोंदा ( पृष्ठ – 45 से 50 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः दक्खिनी साहित्यकारों और उनकी दक्खिनी रचनाओं का संकलन है। इसमें गोंदा का संक्षिप्त परिचय तथा उनकी दक्खिनी रचनाओं को भी संकलित किया गया है।

2. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संस्करण – 1957 ई. में संकलित गोंदा की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. गोंदा ( पृष्ठ – 271 से 276 तक )

102. वही, पृष्ठ – 50

**ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मराठी संतों के जीवन और कृतित्व पर आलोचनात्मक हस्तक्षेप है। इसमें गोंदा की दक्खिनी रचनाओं के साहित्यिक विश्लेषण के साथ उनकी दक्खिनी रचनाओं को भी संकलित किया गया है।

3. परमानंद पांचाल ( चयन एवं संपादन ), दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, साहित्य अकादेमी, प्रथम संस्करण – 2008 ई. में संकलित गोंदा दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. गोंदा ( पृष्ठ – 144 से 147 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः दक्खिनी साहित्यकारों और उनकी दक्खिनी रचनाओं का संकलन है। जिसमें गोंदा का संक्षिप्त परिचय तथा उनकी दक्खिनी रचनाओं को भी संकलित किया गया है।

## मध्यकाल

( 15वीं से 17वीं शताब्दी तक )

परमानंद पांचाल दक्खिनी मध्यकाल की समयावधि में राजनीतिक और साहित्यिक भूमिका को बतलाते हुए लिखते हैं कि "सन् 1481 ई. में बहमनी राज्य प्रासाद के सुदृढ़ स्तंभ प्रजापालक प्रधानमंत्री महमूद गावां की निर्मम हत्या स्वयं बादशाह की प्रेरणा से हो गई। भूल का रहस्योद्घाटन होने पर महमूद भी दूसरे वर्ष प्रायश्चित की आग में जलकर चल बसा। इसके बाद बहमनी शासन का पतन आरंभ हो गया। 1490 ई. में बीजापुर में यूसुफ़ आदिलशाही वंश की तथा 1510 ई. में गोलकुंडा में क़ुतुबुलमुलक ने क़ुतुबशाही वंश की नींव डाली। इनके अतिरिक्त 1481 ई. में बरीदशाही और 1490 ई. से दक्खिनी निज़ामशाही वंश की स्थापना भी हो गई। इस प्रकार 1490 ई. से दक्खिनी का एक नया युग आरंभ हो जाता है, जिसका विकास मुख्यतः दो शासनों – आदिलशाही शासन ( 1490-1686 ई. ) और क़ुतुबशाही शासन ( 1510-1687 ई. ) में हुआ था। यद्यपि निज़ामशाही शासन ( 1490-1633 ई. ) और बरीदशाही शासन ( 1437-1619 ई. ) के अंतर्गत भी

दक्खिनी हिन्दी में काव्य-रचना हुई थी, किन्तु 'अशरफ़' जैसे एक-दो कवि को छोड़कर अन्य किसी कवि की कोई महत्त्वपूर्ण रचना उपलब्ध नहीं है। साहित्य की प्रौढ़ता, विविधता और लोकप्रियता की दृष्टि से इसे दक्खिनी हिन्दी का स्वर्णयुग कहा जा सकता है।"[103] इस मध्यकाल में दक्खिनी को विकसित होने का अभूतपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। काव्य में भक्ति और शृंगार का एक सरस समन्वय मिलता है। जिसके उदाहरण कमोबेश मराठी संतों में भी दीख पड़ते हैं। बहरहाल, सुविधा की दृष्टि से हम मध्यकाल के दक्खिनी साहित्य का अध्ययन निम्नलिखित शासनों के अंतर्गत रखकर कर सकते हैं –

( क ) निज़ामशाही और बरीदशाही काल ( सन् 1487-1633 ई. )

**परिचय** – निज़ामशाही शासन का संस्थापक मलिक अहमद अहरी ( सन् 1490-1509 ई. ) था, जिसने सन् 1490 ई. में बहमनी राज्य से विद्रोह करके अपने स्वतंत्र राज्य की घोषणा कर दी थी। इसमें नौ सुल्तान हुए। जैसे अमहद निज़ामशाही ( सन् 1490-1509 ई. ) आदि। इस राज्य के सुल्तानों को सदा युद्ध और संघर्ष का सामना करना पड़ता था। इसलिए साहित्य और कला का अधिक विकास नहीं हो सका। इस काल का सर्वाधिक उल्लेखनीय कवि शाह अशरफ़ था। बहमनी राज्य के क्षीण होने पर सर्वप्रथम अमीर क़ासिम बरीद ने सन् 1487 ई. में बीदर में बरीदशाही वंश का शासन स्थापित किया, किन्तु यह अधिक दिन नहीं ठहर सका और शीघ्र ही इसका पतन हो गया। इस शासन काल में आठ सुलतान हुए थे।[104]

( ख ) आदिलशाही शासन ( सन् 1490-1686 ई. )

---

103. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 77

104. देखें – परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 79

बीदर के बरीदशाही वंश के शासक सुलतान : 1. अमीर क़ासिम बरीद ( सन् 1487-1504 ई. ), 2. अमीर अली बरीद ( सन् 1504-1542 ई. ), 3. अली बरीशाह प्रथम ( सन् 1542-1579 ई. ), 4. इब्राहीम बरीदशाह ( सन् 1579-1586 ई. ), 5. क़ासिम बरीदशाह ( सन् 1556-1589 ई. ), 6. अमीर बरीदशाह ( सन् 1589-1601 ई. ), 7. मिर्ज़ा अली बरीदशाह ( सन् 1601-1604 ई. ), 8. अली बरीदशाह द्वितीय ( सन् 1604-1619 ई. )

**परिचय** – बीजापुर के आदिलशाही वंश में नौ सुलतान हुए थे ।[105] इस वंश के अधिकांश सुल्तान धर्म-सहिष्णु, उदार, सुसंस्कृत, विद्या-व्यसनी और कला-प्रेमी थे । इस वंश के चौथे शासक इब्राहीम आदिलशाह ( सन् 1534-1558 ई. ) ने शिया धर्म को छोडकर सुन्नी धर्म ग्रहण कर लिया, जिसका परोक्ष प्रभाव दक्खिनी साहित्य की अभिवृद्धि के रूप में हुआ । इससे ईरानियों का प्रभाव कम हो गया और देशी भाषा और संस्कृत को विकास का अवसर मिला । दक्खिनी को राज्य की सरकारी भाषा बना दिया गया । इससे इस भाषा की जड़ें इतनी सुदृढ़ हो गई थीं कि इनके उत्तराधिकारी अली आदिल शाह के भरसक प्रयत्नों के बावज़ूद फ़ारसी का चलन न हो सका ।

( ग ) क़ुतुबशाही शासन ( सन् 1510-1687 ई. )

**परिचय** – बीजापुर के आदिलशाही शासन की भाँति ही गोलकुंडा के क़ुतुबशाही शासन की स्थापना भी बहमनी राज्य के पतन के बाद हुई थी । इस राजवंश में कुल आठ सुल्तान हुए थे । ये सुल्तान भी उदार, सहिष्णु तथा काव्य और कला के प्रेमी थे । हिन्दुओं के साथ उनका घनिष्ठता का संबंध था । कई सुल्तानों ने हिन्दू रानियों से विवाह भी किया था । इनके राज्य में भी दक्खिनी ही राजभाषा थी ।

बहरहाल, अब मध्यकाल ( 15वीं से 17वीं शताब्दी तक ) के अंतर्गत आने वाले अपने प्रमुख मराठी संत एकनाथ पर आगे चर्चा करते हैं । ताकि एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं का सर्वेक्षण किया जा सके । इस प्रयास में हमें एकनाथ का संक्षिप्त परिचय भी जानने को मिलेगा, जिससे उनकी मूल प्रवृत्ति को जानने में आसानी होगी ।

---

105. देखें – परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 80
बीजापुर के आदिलशाही वंश के शासक सुलतान : 1. यूसुफ़ आदिलशाह ( सन् 1490-1510 ई. ), 2. इस्माईल आदिलशाह ( सन् 1510-1534 ई. ), 3. मल्लू आदिलशाह ( सन् 1534 ई. ), 4. इब्राहीम आदिलशाह प्रथम ( सन् 1534-1558 ई. ), 5. अली आदिलशाह प्रथम ( सन् 1558-1580 ई. ), 6. इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय ( सन् 1580-1627 ई. ), 7. मुहम्मद आदिलशाह ( सन् 1627-1657 ई. ), 8. अली आदिलशाह द्वितीय ( सन् 1657-1672 ई. ), 9. सिकंदर आदिलशाह ( सन् 1672-1686 ई. )

## एकनाथ

( सन् 1528 ई. से 1599 ई. तक )

मराठी संत कवि एकनाथ का जन्म सन् 1528 ई. में पैठण ( औरंगाबाद के समीप ) में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके दादा भानुदास भी मराठी के प्रसिद्ध कवि थे। 13 वर्ष की आयु में एकनाथ ने जनार्दन स्वामी से देवगिरि ( दौलताबाद ) में दीक्षा ली थी। गुरु के आदेश से एकनाथ ने गिरिजाबाई से विवाह किया। एकनाथ भक्त होते हुए भी आदर्श गृहस्थ थे। महाराष्ट्र में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि शंकराचार्य जिस तरह सन्यासाश्रम के आभूषण थे उसी तरह गृहस्थाश्रम के आभूषण एकनाथ थे। परमानंद पांचाल बतलाते हैं कि "1599 ई. में फाल्गुन मास के आरंभ होते ही इन्होंने संसार छोड़ने का संकल्प लिया। यह संयोग ही है कि जिस वर्ष एकनाथ ने काशी में भागवत पूर्ण की, उसी वर्ष तुलसीदास जी ने रामचरितमानस की रचना का प्रारंभ किया।"[106] एकनाथ का सूफ़ी फ़क़ीरों से भी घनिष्ठ संबंध था। अतः इन्होंने भारतीय और मुस्लिम सूफ़ी संतों की विचारधाराओं को समन्वित करने का प्रयास भी किया है। इस रूप में एकनाथ की कविता की अंतर्वस्तु में बहुत विविधता आ गई थी। जैसे एक उदाहरण दृष्टव्य है, एकनाथ का विश्वास था कि ईश्वर और अल्लाह में कोई अंतर नहीं है। महाराष्ट्र की जनता पंढरपुर के विट्ठल से अपार श्रद्धा रखती है। अतः इन्होंने विट्ठल और अल्लाह में एकता स्थापित करते हुए कहा है –

*हज़रत मौला मौला। सब दुनिया पालन वाला।*
*सब घट मो साँई बिराजै। करत है बोलबाला।*
*ग़रीब नवाज़ मैं ग़रीब तेरा। तेरे चरण कूँ रात वाला।*
*अपना साती समझ के लेना। सलील वो ही अल्ला।*
*जिन रूप ते है जगत पसारा। यों ही सल्लाह अल्ला।*
*एक जनार्दनी निज बद अल्ला। असल वो ही बिट पर अल्ला।*[107]

106. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 592
107. देखें – इक़बाल अहमद, दक्खिनी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वही, पृष्ठ – 103

एकनाथ वैष्णव थे। इनके द्वारा 'एकनाथी भागवत' और 'भावार्थ रामायण' की रचना हुई। इनकी दक्खिनी कविता भी बहुत प्रसिद्ध है, जिसमें इन्होंने तत्कालीन अरबी-फ़ारसी शब्दों का भी प्रयोग किया है।

इस प्रकार एकनाथ की दक्खिनी साहित्य में भूमिका की पृष्ठभूमि तैयार होती है। एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं पर अंतर्वस्तु की दृष्टि से शोध के दूसरे अध्याय 'मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : अंतर्वस्तु' के अंतर्गत विस्तार से विचार किया जाएगा। बहरहाल, एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं के सर्वेक्षण से प्राप्त ग्रन्थ निम्नलिखित हैं –

1. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद, प्रथमावृत्ति – 1954 ई. में संकलित एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. एकनाथ ( पृष्ठ – 57 से 66 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः दक्खिनी साहित्यकारों और उनकी दक्खिनी रचनाओं का संकलन है। इसमें एकनाथ का संक्षिप्त परिचय तथा उनकी दक्खिनी रचनाओं को भी संकलित किया गया है।

2. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पुनर्मुद्रण – 2014 ई. में संकलित एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. एकनाथ ( पृष्ठ – 10 से 11 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः दक्खिनी साहित्यकारों और उनकी दक्खिनी रचनाओं का संकलन है। इसमें दक्खिनी का काल-विभाजन दिया गया है। साथ ही, दक्खिनी के पहले रचनाकार सूफ़ी कवि ख़्वाजा बंदा नवाज़ गेसू दराज़ और एकनाथ का संक्षिप्त परिचय तथा उनकी दक्खिनी रचनाओं को भी संकलित किया गया है।

3. परमानंद पांचाल ( चयन एवं संपादन ), दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, साहित्य अकादेमी, प्रथम संस्करण – 2008 ई. में संकलित एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. एकनाथ ( पृष्ठ – 178 से 184 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः दक्खिनी साहित्यकारों और उनकी दक्खिनी रचनाओं का संकलन है। इसमें एकनाथ का संक्षिप्त परिचय तथा उनकी दक्खिनी रचनाओं को भी संकलित किया गया है।

4. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संस्करण – 1957 ई. में संकलित एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. एकनाथ ( पृष्ठ – 277 से 300 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मराठी संतों के जीवन और कृतित्व पर आलोचनात्मक हस्तक्षेप है। इसमें एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं के साहित्यिक विश्लेषण के साथ उनकी दक्खिनी रचनाओं को भी संकलित किया गया है।

## उत्तरकाल

( 17वीं से 19वीं शताब्दी तक )

सन् 1687 ई. तक औरंगज़ेब ने बीजापुर और गोलकुंडा को जीतकर मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया था। जिस कारण आदिलशाही राजवंशों के समाप्त होने के बाद दक्खिनी के कवियों का राजाश्रय छिन गया। इससे दक्खिनी साहित्य के विकास में एक अवरोध आ गया था। फिर भी, जो धारा लगभग 400 वर्षों से प्रवाहित हो रही थी उसमें तुरंत ही कोई परिवर्तन नहीं हुआ। परमानंद पांचाल इसी बाद को धीरेन्द्र वर्मा के हवाले से रेखांकित करते हुए बतलाते हैं कि "साहित्यिक परंपराओं का जो राजभवन दक्खिन में निर्मित हुआ था वह एकबारगी टूटकर गिर नहीं पड़ा। दक्खिनी का साहित्य केवल राजप्रासादों से ही संबंधित नहीं था, बल्कि जनता भी इस भाषा-साहित्य को

जीवन के निकट मानती थी अतएव 1687 ई. के पश्चात् भी दक्खिनी साहित्य का सरोवर अनेक कृतियों द्वारा भरा गया, शाह तुराब जैसे सूफ़ी संत बहरी मसनवीकार, और वजदी प्रभृति कवि इसी काल में हुए थे। यह क्रम अविरल रूप से तब तक चलता रहा जब तक उत्तर में 18वीं शती के प्रथम चरण में उर्दू का नया स्रोत दक्खिन की ओर प्रवाहित नहीं हुआ।"[108]

बहरहाल, अब उत्तरकाल ( 17वीं से 19वीं शताब्दी तक ) के अंतर्गत आने वाले अपने प्रमुख मराठी संत तुकाराम पर आगे चर्चा करते हैं।

## तुकाराम

( सन् 1608 ई. से 1649 ई. तक )

तुकाराम का जन्म सन् 1608 ई. इन्द्राइन नदी के किनारे देहू नामक ग्राम में हुआ था। तुकाराम का विवाह बचपन में ही हो गया था। इनकी पत्नी का नाम रखुमाई था। इन्हें पहली पत्नी की बीमारी के कारण दूसरा विवाह जिजाई जी से भी करना पड़ा। तुकाराम वैश्य जीवन-व्यवसाय यानी व्यापार का कार्य करते थे। जब तुकाराम 17 वर्ष के थे तभी इन्हें व्यापार में हानि हुई यही नहीं महाराष्ट्र में अकाल पड़ा और देखते-देखते तुकाराम को दिवाला निकालना पड़ा।

तुकाराम के समय महाराष्ट्र विशेष कर पूना प्रदेश में बहुत से परिवर्तन हो रहे थे। जनता में एक नई चेतना उत्पन्न हुई, जिसने कुछ दिनों में महाराष्ट्र की कायापलट कर दी। इस चेतना को उत्पन्न करने में समर्थ रामदास और तुकाराम का विशेष योग रहा। ज्ञानेश्वर ने जिस भक्ति भावना का प्रचार किया, नामदेव और एकनाथ ने जिसकी नींव मज़बूत की, तुकाराम ने उसे ही आगे बढ़ाने का कार्य किया। सन् 1649 ई. में तुकाराम का देहांत हुआ। बहरहाल, दक्खिनी कविता के संदर्भ में तुकाराम के पद दृष्टव्य हैं –

*राम कहे सो मुख भला रे खाये खीर खांड*

108. परमानंद पांचाल, वही, पृष्ठ – 100 पर उद्धृत, संदर्भ – धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य, पृष्ठ – 580

*हरि बिन मुख मो धूल परी रे क्या जनी उस रांड*
*चित्त मिले तो सब मिले नाही तो फुकट संग*
*पानी पाथर एक थोर कोरा न भीजे अंग*[109]

इस प्रकार तुकाराम की दक्खिनी साहित्य में भूमिका की पृष्ठभूमि तैयार होती है। इनकी दक्खिनी रचनाओं पर अंतर्वस्तु की दृष्टि से शोध के दूसरे अध्याय 'मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : अंतर्वस्तु' के अंतर्गत विस्तार से विचार किया जाएगा। बहरहाल, तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं के सर्वेक्षण से प्राप्त ग्रन्थ निम्नलिखित हैं –

1. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद, प्रथमावृत्ति – 1954 ई. में संकलित तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   ग. तुकाराम ( पृष्ठ – 97 से 109 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः दक्खिनी साहित्यकारों और उनकी दक्खिनी रचनाओं का संकलन है। इसमें तुकाराम का संक्षिप्त परिचय तथा उनकी दक्खिनी रचनाओं को भी संकलित किया गया है।

2. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पुनर्मुद्रण – 2014 ई. में संकलित तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. तुकाराम ( पृष्ठ – 218 से 219 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः दक्खिनी साहित्यकारों और उनकी दक्खिनी रचनाओं का संकलन है। इसमें तुकाराम के संक्षिप्त परिचय से साथ उनकी दक्खिनी रचनाओं को भी संकलित किया गया है।

109. देखें – श्रीराम शर्मा, दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, वही, पृष्ठ – 377

3. शंकरराव देव, संत तुकाराम : संक्षिप्त जीवनी तथा वाणी, प्रकाशक – राजस्थान खादी संघ, जयपुर, संस्करण – 1958 ई. में संकलित तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. तुकाराम ( पृष्ठ – 38 से 91 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः तुकाराम जी के जीवन और कृतित्व पर आलोचनात्मक हस्तक्षेप है। इसमें इनकी कुछ दक्खिनी रचनाएँ भी संकलित हैं।

4. हरि रामचंद्र दिवेकर, संत तुकाराम, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, संस्करण – 1937 ई. में संकलित तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. तुकाराम ( पृष्ठ – 149 से 159 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः तुकाराम जी के जीवन और कृतित्व पर आलोचनात्मक हस्तक्षेप है। इसमें इनकी दक्खिनी कविता पर भी एक आलोचनात्मक लेख शामिल है, इसमें तुकाराम के कुछ दक्खिनी पदों को संकलित किया गया है।

5. भालचंद्र नेमाडे, तुकाराम ( भारतीय साहित्य के निर्माता ) हिन्दी अनुवाद – चंद्रकांत पाटील, साहित्य अकादेमी, पुनर्मुद्रण – 2016 ई. में संकलित तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. तुकाराम ( पृष्ठ – 62 से 65 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः तुकाराम जी के जीवन और कृतित्व पर आलोचनात्मक हस्तक्षेप है। इसमें इनकी दक्खिनी रचनाओं के भी कुछ पद और साख्या संकलित हैं।

6. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संस्करण – 1957 ई. में संकलित तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं का विवरण –

   क. तुकाराम ( पृष्ठ – 325 से 334 तक )

**ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मराठी संतों के जीवन और कृतित्व पर आलोचनात्मक हस्तक्षेप है। इसमें तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं के साहित्यिक विश्लेषण के साथ उनकी दक्खिनी रचनाओं को भी संकलित किया गया है।

7. ना. वि. सप्रे ( अनुवाद ), तुकाराम गाथा ( संतश्रेष्ठ तुकाराम के चुने हुए अभंगों का हिन्दी भावानुवाद ), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण – 2011 ई. में संकलित मराठी संत तुकाराम के अभंगों का विवरण –
   क. तुकाराम ( पृष्ठ – 01 से 235 तक )

   **ग्रंथ परिचय** – यह ग्रंथ मूलतः तुकाराम जी की 'तुकाराम गाथा' है। इसमें इनके मराठी भाषा में लिखे 853 अभंगों का हिन्दी अनुवाद दिया गया है।

**मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं के सर्वेक्षण के आधार ग्रंथ**

अब अपने इस अध्याय के विषय पर यानी 'मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : एक सर्वेक्षण' की दृष्टि से आगे बात करते हैं। विभिन्न ग्रंथों और विद्वानों के मत के सर्वेक्षण से पता चलता है कि मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं के फुटकल संग्रह ही मिलते हैं, इन संतों ने दक्खिनी में कोई ग्रंथ रचना की हो यह मालूम नहीं होता। कुछ ऐसे ग्रंथ भी मिलते हैं जिनमें मराठी और हिन्दी के रूप में ही इन मराठी संतों की रचनाओं का संग्रह है, सर्वेक्षण में उन्हें भी 'दक्खिनी' रचनाओं के सूचना संदर्भ के रूप में रख लिया गया है। इस संदर्भ में सर्वेक्षण के उपरांत नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की 'दक्खिनी' रचनाओं हेतु प्राप्त प्रमुख ग्रंथों की चर्चा हम करते आए हैं। बहरहाल, अब 'मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : एक सर्वेक्षण' पर बात करते हुए अपने प्रमुख आधार ग्रन्थों का यहाँ उल्लेख करते हैं। यहाँ यह फिर स्पष्ट कर देना होगा कि मराठी संतों की 'दक्खिनी' रचनाओं के फुटकल संग्रह ही मिलते हैं। वहीं हमारे मुख्य आधार ग्रंथ चार ही हैं, जो निम्नलिखित हैं –

1. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद, प्रथम आवृत्ति – 1954 ई.
2. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पुनर्मुद्रण – 2014 ई.
3. परमानंद पांचाल ( चयन एवं संपादन ), दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, साहित्य अकादेमी, प्रथम संस्करण – 2008 ई.
4. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संस्करण – 1957 ई.

**********

# दूसरा अध्याय

## मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : अंतर्वस्तु

# दूसरा अध्याय

## मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : अंतर्वस्तु

**मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में अंतर्वस्तु की पड़ताल**

मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं के अंतर्वस्तु की पड़ताल करने का सीधा तात्पर्य उसके भाव-जगत के साक्षात्कार से है। हम जानते हैं कि इन संतों ने फुटकल दक्खिनी रचनाओं के अतिरिक्त अपनी लोकभाषा में ही अधिक लिखा-कहा है। जिसका देय है कि मध्यकालीन भक्ति और लोक परंपरा का भाव इनकी दक्खिनी रचनाओं में भी देखने को मिलता है। बहरहाल, हम इन मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं पर इस दृष्टि से उसकी रचनाशीलता में अंतर्वस्तु की पड़ताल करेंगे कि उसके मूल भाव-जगत से सीधा साक्षात्कार किया जा सके।

मूल रूप से इन मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में सामाजिक भेदभाव का विरोध, जातिप्रथा और वर्णाश्रम ब्राह्मणधर्म पर कटाक्ष, अपनी आजीविका का तानाबाना, निर्गुण-सगुण स्वरूप का चित्रण, भक्ति में अपने स्त्री रूप का ज़िक्र, ईश्वरीय भक्ति-भावना, एकेश्वरवाद, ईश के प्रति समर्पण, मूर्ति पूजा का खण्डन, भगवान विट्ठल की स्तुति, विट्ठल और अल्लाह में स्थापित एकता, वैष्णव भक्ति, आराध्य के नाम स्मरण की महिमा, राम की स्तुति, श्रीकृष्ण लीला, गोपी-प्रेम, पाखंड-परिचय, नीति और भक्ति-उपदेश, विरह वर्णन, लौकिक और दैविक चमत्कार, लोक मर्यादा, जीवन-रहस्य, रहस्यवाद, सामाजिक मिथक, गुरु महिमा, विषमता-आडंबर का अस्वीकार, लोक-परलोक में जीव दशा, निर्वाण प्राप्ति, योग साधना, जीव और माया, उदार मानवतावाद, आत्म परिचय, अपने समकालीनों से जुड़ी किंवदंतियों और मिथकों पर लिखी गई रचना, आदर्श स्वभाव, आचरण की शुद्धि पर बल, संत स्वभाव,

नारी, वैराग्य, जनम-मरण, प्रेम निरूपण इत्यादि के भाव-जगत का वर्णन मिलता है। यह उल्लेखनीय है कि मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में इस अंतर्वस्तु को समझने के लिए हमें दक्खिनी रचनाओं के उपलब्ध पाठ से होकर गुज़रना पड़ेगा। क्रमशः यहाँ हम मराठी संत नामदेव ( सन् 1270-1350 ई. ), गोंदा ( सन् 1300-1351 ई. ), एकनाथ ( सन् 1528-1599 ई. ) और तुकाराम ( सन् 1608-1649 ई. ) की प्राप्त दक्खिनी रचनाओं पर विचार करेंगे।

**नामदेव की दक्खिनी रचनाएँ और उसकी अंतर्वस्तु**

नामदेव की दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु पर विचार करने से पूर्व हम उनकी समयावधि को जान लेते हैं। पहले अध्याय में हमने दक्खिनी रचनाओं का काल विभाजन किया था जिसमें नामदेव को हमने दक्खिनी साहित्य के आरंभिक काल ( 13वीं से 15वीं शताब्दी तक ) में रखा था क्योंकि नामदेव का जीवन सन् 1270-1350 ई. तक माना जाता है। जो इनकी रचनाओं का समय भी है। अब हम नामदेव की प्राप्त दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु पर तत्कालीन स्थिति को ध्यान में रखते हुए विचार करेंगे। नामदेव के जीवन और तत्कालीन परिस्थिति पर हम पहले अध्याय में विचार कर चुके हैं। हम देखते हैं कि नामदेव की दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु में विविधता है। यह बात उनकी दक्खिनी रचनाओं के सर्वेक्षण से प्राप्त संग्रहों पर विचार करने से दिखाई देती है। इनकी उदात्त भक्ति-भावना हर तरह के भेदभाव, विषमता और आडंबर को अस्वीकार करती है, यह तेवर इनकी दक्खिनी रचनाओं में भी अभिव्यक्त हुआ है। हिन्दी के संत काव्य में जो उदार मानवतावाद मिलता है उस पर नामदेव का गहरा प्रभाव है।

नामदेव की दक्खिनी रचनाओं की परिपक्वता का पता इसी से चलता है कि जीव और ब्रह्म जैसी अवधारणा से संबद्ध रचना अपनी दार्शनिकता में बेहद चिंतनधर्मी एवं गूढ़ बातों को समाहित किए

हुए है। जिसमें निर्गुण-सगुण की बात भी सीधे सरल ढंग से अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं के रूप में व्यक्त की गई है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि वह निर्गुण-सगुण को दो रूपों में नहीं देखते। उनके लिए संसार ब्रह्म की लीला है, जिसमें निर्गुण-सगुण भिन्न नहीं है, जिसका रूप सर्वव्यापी गोविन्द में समाहित है। इस रूप एकत्व को नामदेव ने जल-तरंग न्याय के अनुसार सर्वत्र अनुभव किया है, जिसके भेद तत्त्व को हमें समझना होगा। नामदेव अपने एक दक्खिनी पद में कहते हैं कि वह निर्गुण ब्रह्म अनेक और एक सब कुछ है। मैं जिधर देखता हूँ उधर वही है। कोई विरला ही इस बात को समझ सकता है। वह व्यापक राम शत सहस्र मणियों में एक सूत्र की भाँति सब में ओत-प्रोत है। जिस प्रकार तरंग, फेन और बुदबुदा जल से भिन्न नहीं हैं उसी प्रकार संसार के नाना रूप भी उस एक ही के रूप हैं जो सब में समाया हुआ है। यह संसार परमात्मा की लीला है। विचार करने पर भी वह भिन्न सिद्ध नहीं होता। वस्तुतः सब कुछ गोविन्दमय है। केवल वह एक मुरारी घट-घट वासी है। नीचे इस पद में यही बातें नामदेव ने दक्खिनी में कही हैं –

*एक अनेक व्यापक, पूरक जद देखो तद सोई।*
*माया चित्र, विचित्र विमोहित बिरला बूझे कोई॥*
*सब गोविन्द है सब गोविन्द है गोविन्द बिन नहीं कोई।*
*सूत एक मन सत सहस है जैसे ओत प्रोत प्रभु सोई॥*
*जल तरंग और फेन बुदबुदा जल ते भिन्न न कोई।*
*यह प्रपंच परब्रह्म की लीला और बिचारत भिन्न न होई॥*
*मिथ्या परम अर सुपन मनोरथ सत्त पदारथ जान्या।*
*सुकीरत मनसा गुरूपदेशी जागत ही मन मान्या॥*
*कहत नामदेव हरी की रचना देखो हृदय विचारी।*
*घट घट अन्तर सर्व निरन्तर केवल एक मुरारी॥*[110]

110. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 41-42

[ परमात्मा एक ही है, वह सभी रूपों में व्याप्त है, इसलिए हम जिधर देखते हैं उधर वही दिखाई देता है। यह संसार उसकी विचित्र मोहिनी माया का प्रसार है, जिसे कोई विरला ही समझ पाता है। यह सब गोविन्दमय है, गोविन्द के बिना यहाँ कुछ नहीं है। एक धागे में जैसे असंख्य मणियाँ गूँथी जा सकती हैं, वैसे ही परमात्मा हमारे जगत की प्रत्येक वस्तु में समाहित है। जिस प्रकार पानी, तरंग, फेन और बुलबुला पानी से अलग नहीं हैं उसी प्रकार यह संसार ब्रह्म की लीला है, जो उससे परमात्मा से भिन्न नहीं है। मिथ्या, भ्रम, स्वप्न और अपनी आकांक्षा के कारण हम सांसरिक पदार्थों को ही सच मान लेते हैं। गुरु के उपदेश और मार्गदर्शन से जागृत होकर मन उस परमात्मा को पहचान लेता है। नामदेव कहते हैं कि अपने हृदय में विचार करके देखो तो पता चलेगा कि यह सब ईश्वर की सृष्टि है और वही परमात्मा सदैव घट-घट में व्याप्त है। ]

नामदेव ने अपनी एक दक्खिनी रचना में ईश्वर के विषय में उस प्रीति को बतलाया है जिसमें उनके भक्ति-भाव का सार निहित है। उनका भगवत्प्रेम व्यापक है, नामदेव ने अपनी भगवद्भक्ति में आदर्श मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है। नामदेव ईश्वर प्रीति के विषय में सच्चे भाव अभिव्यक्त करने के साथ यह विनती करते हैं कि गोविन्द हमेशा उनके मन में बसे रहें –

*जैसे भूखे प्रीत अनाज। तृखावन्त जल सेती काज ॥*
*जैसे मूढ़ कुटुम्ब परायण। तैसे नामें प्रीत नरायण ॥*
*जैसे पर पुरखा पर नारी। लोभी नर धन का हितकारी ॥*
*कामी पुरखा कामिनी प्यारी। ऐसे नामा प्रीत मुरारी ॥*
*सोई प्रीत जे अभिलाये। गुरु प्रसादा दूधा जाये ॥*
*जैसी प्रीत बालक अर माता। तैसी हर सेती मन राता ॥*
*प्रणवे नामदेव लागी प्रीत। गोविन्द बसे हमारे चीत ॥*[111]

111. वही, पृष्ठ – 44

[ जिस प्रकार कोई भूखा व्यक्ति अनाज से प्रेम करता है, प्यासा व्यक्ति पानी से और अविवेकी व्यक्ति परिवार में आसक्त रहता है, उसी प्रकार नामदेव नारायण से प्रेम करते हैं। जैसे पर पुरुष में स्त्री की आसक्ति होती है, लोभी को धन से लगाव होता है, कामी पुरुष को कामिनी ही प्यारी लगती है, वैसे ही नामदेव मुरारी से प्रेम करते हैं। नामदेव कहते हैं कि जो कोई उस परमात्मा से प्रीत की अभिलाषा करता है, गुरु कृपा से उसकी सारी दुविधाएँ मिट जाती हैं। जैसा प्रेम भाव बच्चे और माँ में होता है वैसा ही प्रेम ईश्वर से भी हो सकता है। नामदेव को गोविन्द से प्रेम हो गया है इसलिए वे विनती करते हैं कि गोविन्द हमेशा उनके मन में बसे रहें। ]

नामदेव दर्ज़ी जीवन-व्यवसाय से जुड़े हुए थे यही कारण है कि वे अपने इस व्यवसाय से जुड़ी शब्दावली में भगवद्भक्ति की अभिव्यक्ति करते हैं। जिस तरह कबीर की बहुत-सी उपमाएँ और रूपक जुलाहे के व्यवसाय से सम्बद्ध हैं, उसी तरह इन्होंने अपनी अनेक उपमाएँ अपने जीवन-व्यवसाय से ली हैं। यह तथ्य उस काल-खण्ड में साधारण होते हुए भी असाधारण है कि लगभग सभी निर्गुण संतों ने जो किसी न किसी दैनिक जीवन-व्यवसाय से जुड़े हुए थे अपनी रचनाओं में अपने व्यवसाय से जुड़ी हुई शब्दावली को अपनी बात कहने का माध्यम बनाया है। नामदेव कहते हैं कि मेरा मन गज है और जिह्वा कैंची है। मैं मन रूपी गज और जिह्वा रूपी कैंची की सहायता से यम का बंधन काटता हूँ। मैं कपड़ा रंगने और सिलने का काम करता हूँ, घड़ी भर के लिए भी भगवान का नाम विस्मृत नहीं करता हूँ। मराठी भाषा में दर्ज़ी को शिंपी कहते हैं। नामदेव ने संभवतः शिंपी को ही उत्तर भारतीय उच्चारण दोष के साथ छींपी कहा होगा, इन्होंने छींपी/ शिंपी का प्रयोग दर्ज़ी के अर्थ में निस्संदेह किया है। नामदेव की दक्खिनी रचनाओं से इस संदर्भ में उनकी यह रचना दृष्टव्य है, जहाँ वे इस शब्द रूपक का प्रयोग करते हैं –

*मन मेरो गज, जिह्वा मेरी काती। माप माप काटो जम की फाँसी॥*
*कहा करूँ जाती कहा करूँ पाती। राम को नाम जपो दिन राती॥*
*राग बिन रागो सिव बिन सीवो। राम नाम बिन कहीं न जीवो॥*

*सोने की सुई रूपे का धागा। नामा का चित्त हरे सूँ लागा॥*[112]

[ मेरा मन कपड़ा नापनेवाला गज है और मेरी जीभ कैंची के समान है, जिससे मैं मृत्यु के फाँस को नाप-नापकर काटता हूँ। मुझे जाति-पाति से क्या काम ? मैं तो दिन-रात राम नाम का जाप करता हूँ और भक्ति के भाव से सिलाई का काम कर लेता हूँ, राम नाम के बिना मैं नहीं जी सकता। नामदेव के पास सोने की सूई और रूपए का धागा है जिससे उनका चित्त सदैव ईश्वर में लगा रहता है। ]

ईश्वरीय भक्ति-भावना से जुड़ी नामदेव की दक्खिनी रचनाएँ उनकी ईश्वर के प्रति आस्था को व्यक्त करती हैं, नामदेव मूर्ति पूजा का खण्डन करते हुए कहीं-कहीं व्यंग्य भी करते हैं, नामदेव इस दक्खिनी रचना में यही भाव व्यंजित करते हुए कहते हैं कि वे इस भक्ति रूप में हरि की सेवा में लगे हुए हैं –

*जौ राजु देहि त कवन बडाई। जौ भीख मंगावहि त किआ घटि जाई॥*
*तूं हरि भजु मन मेरे पदु निरबानु। बहुरि न होई तेरा आवनजानु॥*
*सभ तै उपाई भरम भुलाई। जिस तूं देवहि तिसहि बुझाई॥*
*सतिगुरु मिलै त सहसा जाई। किस हऊ पूजऊ दूजा नदरि न आई॥*
*एकै पाथर कीजै भाऊ। दूजै पाथर कीजै पाऊ॥*
*जै उहु देऊ त उहु भी देवा। कहि नामदेऊ हम हरि की सेवा॥*[113]

[ यदि ईश्वर हमें राज-पाट दे दे तो उससे हमारा क्या बढ़ जाएगा और यदि वह हमें भीख माँगने के लिए मज़बूर करे तो हमारा क्या घट जाएगा। इसलिए हे मेरे मन ! तू ईश्वर की भक्ति कर ताकि निर्वाण ( मोक्ष ) प्राप्त हो जाए और संसार के आवागमन से मुक्ति मिले। सारी सृष्टि भ्रम में भूली रहती है। तुम जिसे ज्ञान देते हो वही तुम्हें बूझ पाता है। यदि सद् गुरु मिल जाएँ तो सारा भ्रम दूर हो जाता है। हम तुम्हारी ही पूजा करते हैं क्योंकि हमें कोई दूसरा नज़र नहीं आता। एक पत्थर में आप आस्था रखते हो और दूसरे पर पाँव

112. वही, पृष्ठ – 41
113. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 243

रखते हो, यदि एक पत्थर देवता है तो दूसरा भी देवता ही होगा; इसलिए नामदेव किसी पत्थर की पूजा नहीं करता, केवल ईश्वर की भक्ति भाव से सेवा करता है। ]

इस प्रकार की ईश्वरीय आराधना से जुड़ी अन्य कई रचनाएँ नामदेव की दक्खिनी रचनाओं में शामिल हैं, इससे यह स्पष्ट होता है कि इनकी दक्खिनी रचनाओं का एक हिस्सा ईश्वरीय भक्ति-भावना से जुड़ा हुआ है। नामदेव की यह भावना विचारणीय है कि उनकी दृष्टि में उस ईश्वरीय तत्त्व का रूप एक ही है, जो सभी को समान भाव से देखता है वही एक है। नामदेव कहते हैं कि ठाकुर को स्नान कराने के लिए मैं जल से भरा घड़ा लाया, उस जल में बयालीस लाख जीव रहते हैं, जिनमें भगवान का निवास है, फिर मैं उससे उन्हें कैसे स्नान कराऊँ ? मैं जिधर भी जाता हूँ उधर भगवान हैं जो परमानंद में लीन हो सदैव लीलाएँ करते हैं। इधर भगवान हैं, उधर भगवान हैं, भगवान के बिना संसार में कुछ भी नहीं है। नामदेव कहते हैं – हे भगवान ! पृथ्वी के जल-थल आदि सभी स्थानों में तुम व्याप्त हो। भगवान की पूजा के लिए जल, पुष्प, नैवेद्य, दूध आदि का प्रबंध आडंबर पूर्ण है। भले ही पुजारी इन्हें विशुद्ध और पवित्र समझे। कीटों, भ्रमरों, बछड़ों आदि के द्वारा तो ये पहले ही जूठा कर दिया गया है। उसके बाद भी उन्हें पवित्र कैसे मान लिया जाए ? आख़िर ये पूजा की सामग्री कैसे हो सकते हैं ? उनकी इस दक्खिनी रचना में यही भाव देखने योग्य हैं –

*आनीले कुंभ भराईले ऊदक ठाकुर कऊ इसनानु करऊ ॥*
*बइआलीस लख जी जल महि होते बीठलु मैला काइ करऊ ॥*
*जत जाउ तत बीठलु भैला। महा अनंद करे सद केला ॥*
*आनीले फूल परोइले माला ठाकुर की हऊ पूज करऊ ॥*
*पहिले बासु लई है भवरह बीठल मैला काह करऊ ॥*
*आनीले दुधु रीधाइले खीरं ठाकुर कऊ नैवेदु करऊ ॥*
*पहिले दूधु बिटारिउ बछरे बीठलु मैला काह करऊ ॥*
*ईभै बीठलु, ऊभै बीठलु, बीठल बिनु संसारु नहीं ॥*

*थान थनंतरि नामा प्रणवै पूरि रहिउ तूं सरब मही ॥*[114]

[ घड़े में पानी भर ठाकुर ( ईश्वर ) से स्नान का आग्रह किया, उस पानी में लाखों जीव निवास करते हैं जिनमें उसी का अस्तित्व समाहित है। भला उससे विट्ठल को कैसे स्नान कराऊँ ? जहाँ जाओ वहाँ विट्ठल विद्यमान हैं, यह महानंद सर्वत्र सदैव अकेला ही उपस्थित है। फूल लेकर माला में पिरोया ताकि ठाकुर की पूजा कर सकूँ। लेकिन फूल में पहले भँवरे का बास था उससे विट्ठल को मैला क्यों करें ? दूध से खीर बना ठाकुर के लिए नैवेद्य तैयार किया। लेकिन उस दूध को पहले बछड़े ने जूठा कर दिया है उससे विट्ठल को मैला क्यों करें ? यहाँ इसमें भी विट्ठल का निवास है, वहाँ उसमें भी विट्ठल का निवास है। विट्ठल के बिना यह संसार है ही नहीं। ब्रह्म स्थान से अलग भी नामदेव को उसी विट्ठल की सर्वत्र भेंट दिखाई देती है। ]

नामदेव ने अपनी दक्खिनी रचनाओं में ईश्वर भक्ति में रूप साम्य-भाव की परिस्थिति का भी वर्णन किया है। इनकी दक्खिनी रचनाओं में राम के उस रूप का भी ज़िक्र है जो सब में वही के रूप में उपस्थित है। नामदेव की विनती है कि उन्हें निष्काम की अथवा अनासक्त की दशा उपलब्ध हो क्योंकि ऐसा कर लेने पर साम्य-भाव आ जाता है। फिर कौन स्वामी और कौन दास ? सभी एक ही स्वरूप के पूरक हैं। नामदेव कहते हैं कि सर्वत्र राम ही राम है। घट-घट में वही बोल रहा है। स्थावर, जंगम, कीट, पतंग सब में वही समाया हुआ है। एक ही मिट्टी से हाथी, चींटी तथा नाना प्रकार की वस्तुएँ बनती हैं। निष्काम की अथवा अनासक्त कि दशा उपलब्ध होने पर साम्य-भाव आ जाता है और स्वामी-सेवक भाव जाता रहता है। यही बातें दक्खिनी में नामदेव ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

*सभै घट रामु बोलै रामा बोलै राम बिना को बोलै रे।*
*एकल माटी कुंजर चीटी भाजन हैं बहुनाना रे ॥*
*असथावर जंगम कीट पतंगम घटि घटि रामु समाना रे ॥*
*एकल चिंता राखु अनंता अउर तजहु सभ आसा रे ॥*

114. वही, पृष्ठ – 242

*प्रणवै नामा भए निहकामा को ठाकुरु को दासा रे ॥*[115]

[ सब घट में राम ही बोल रहे हैं, राम बोलते हैं इसलिए राम के बिना कौन बोल सकता है ? एक ही धरती पर हाथी और चींटी निवास करते हैं लेकिन दोनों की वाणी भिन्न है । जड़-चेतन, कीट-पतंगा इत्यादि घट-घट में राम समाए हुए हैं । एक वही अनेक की चिंता रखे हुए हैं औरों से तो इस आशा का त्याग हो गया है । नामदेव इस भरोसे निष्काम की विनती करते हैं ताकि उससे प्राप्त साम्य-भाव में स्वामी और दास का भेद मिट जाए । ]

अपनी एक दक्खिनी रचना में उस अंतर्यामी का वर्णन नामदेव ने इस प्रकार किया है कि जो जन उस पुरुषोत्तम को भजता है उसकी अविगत वाणी ( ज्ञानस्वरूप भाषा ) विरले भाव अभिव्यक्त करती है और वह जन जगत स्वरूप जीवन को प्राप्त कर हृदय में उस विचित्र अलख की अनुभूति को प्राप्त कर लेता है –

*मन की बिरथा मनु ही जानै कै बूझल आगै कहीए ।*
*अंतरजामी रामु रवांई मै उरु कैसे चाहीऐ ॥*
*बोधिअले गोपाल गुसाई ॥ मेरा प्रभु रहिआ सरबे ठायी ॥*
*माने हाटु माने पाटु मानै है पसारी ॥*
*मानै बासै नाना भेदी भरमतु है संसारी ॥*
*गुरूकै सबदि एहु मनुराता दुबिधा सहजि समाणी ।*
*सभो हुकमु हुकमु है आपै निरमऊ समतु बिचारी ॥*
*जो जन जानि भजहि पुरखोतमु ताची अबिगतु बाणी ॥*
*नामा कहै जगजीवनु पाइआ हिरदै अलख बिडाणी ॥*[116]

[ मन की व्यथा मन ही जानता है जो इसे बूझ सकता है उसके आगे अपनी बात कह सकते हैं । स्वामी राम अंतर्यामी हैं जो यह जानते हैं कि मेरा हृदय क्या चाहता है । गोपाल स्वामी को मेरा बोध है, मेरा प्रभु

115. वही, पृष्ठ – 254
116. वही, पृष्ठ – 263

सभी स्थानों पर निवास करता है। मन ही बाज़ार है, वह स्वयं वस्तु भी है, मन सभी ओर व्याप्त है। मन में नाना प्रकार के भेद हैं जिससे संसार भ्रम में पड़ा रहता है। सद् गुरु के शब्द इस मन की दुविधा को सहज में समाहित कर देते हैं। सब आदेश और आदेश ही हैं, आप स्वयं निर्मल भाव से इस पर विचार कर सकते हैं। जो जन यह जान कर पुरुषोत्तम को भजता है उसकी वाणी अविगत विधान का रूप ले लेती है। नामदेव कहते हैं कि संसार रूपी जीवन की प्राप्ति हो चुकी इसीलिए हृदय में अलख की ज्योति जल उठी है। ]

नामदेव ने अपनी दक्खिनी रचनाओं में मानवीय उपदेश हेतु आदर्श बातें भी व्यक्त की हैं जो आदर्श भक्त जीवन को विशिष्ट भाव प्रदान करती है। इस दक्खिनी रचना में उनका यह भाव कि किस लिए ध्यान जाप लिया जाए जब हमें अपनी सुध ही नहीं रह गई, उस कालखण्ड के जीवन आदर्शों के साथ वर्तमान भावबोध से जुड़ा हुआ उपदेश भी है –

*साँप कुच छोडे बिख नहीं छाँडे। उदक माँहिं जैसें बक ध्यान माँडे॥*
*काहे को कीजे ध्यान जपना। जब ते सुध नहीं मन अपना॥*
*नामे के स्वामी लाह के झगड़ा। राम रसायन पिवो दे रगड़ा॥*[117]

[ साँप केंचुल छोड़ सकता है अपना विष नहीं त्याग सकता यह प्रवृत्ति तो पानी में जैसे बगुला ध्यान लगाए बैठा रहता वैसी है। फिर किस लिए ध्यान और जाप किया जाए जब अपने मन की सुध ही नहीं रह गई। नामदेव कहते हैं कि स्वामी से लाभ के लिए झगड़ा ठहर गया है अब तो राम के भक्ति आस्वाद से ही यह झंझट छूटेगा। ]

नामदेव अपनी दक्खिनी रचनाओं में सांसारिक दार्शनिकता के साथ सामाजिक और व्यक्तिगत भावों की मान्यता को भी अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रकार वे संसार के उस अज्ञेय तत्त्व को बड़ी सहजता से

117. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 40-41

अपनी रचना का हिस्सा बनाते हुए बतलाते हैं कि पण्डित लोग व्यर्थ ही वेद का बखान करते हैं और वास्तविकता से अलग उस अज्ञेय को जानने के लिए असंभव बातें करते हैं, मूर्ख लोगों नामदेव तो उस राम में ही सब जान लेता है –

*कोई बोलै नीरवा कोई बोलै दूरि । जल की माछली चरै खजूरि ॥*
*कांइ रे बकबादु लाइउ । जिन हरि पाइउ तिनहि छपाइउ ॥*
*पंडित होइकै बेदु बखानै । मूरखु नामदेऊ रामहि जानै ॥*[118]

[ कोई उसे शब्द रहित बतलाता है, कोई उसे अत्यंत दूर अवस्थित कह देता है । जल की मछली खजूर चढ़ रही है । यह सब व्यर्थ की बातें किस लिए ? जो हरि को पा जाए वही कुछ कहे तो बात उचित हो सकती है । पण्डित हो कर लोग इसके लिए वेद का बखान करते हैं जबकि मूर्ख लोगों नामदेव तो उस राम में ही सब जान लेता है । ]

नामदेव ने अपनी दक्खिनी रचनाओं में कई बार राम नाम का उल्लेख किया है । यह उनकी रचनाओं का विषय है । जिसके पीछे उनकी जीवन दृष्टि का मर्म छिपा हुआ है । जहाँ नामदेव आराध्य भगवान विट्ठल के सगुण रूप को भजते हैं वहीं वे राम का नाम निर्गुण रूप में स्मरण करते हैं और जतलाते हैं कि मेरे प्रियतम राम हैं –

*मारवाडि जैसे नीरु बालहा बेलि बालहा करहला ॥*
*जिउ कुरंग निसि नादु बालहा तिउ मेरै मंनि रामईआ ॥*
*तेरा नामु रूडो, रूपु रूडो, अतिरंग रूडो मेरो रामईआ ॥*
*जिऊ धरणी कऊ इंद्र बालहा कुसम बासु जैसे भवरला ॥*
*जिऊ कोकिल कऊ अंबु बालहा तिऊ मेरे मनीं रामईआ ॥*
*चकवी कऊ जैसे सूरु बालहा मान सरोवर – हंसुला ॥*
*जिऊ तरुणी कऊ कंतु बालहा तिऊ मेरे मनीं रामईआ ॥*
*बारिक कऊ जैसे खीरु बालहा चात्रिक मुख जैसे जलधरा ॥*

118. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 247

*मछुली कऊ जैसे नीरु बालहा तिऊ मेरे मनि रामईआ ॥*
*साधिक-सिध सगल मुनि चाहहि बिरलो काहू डीठुला ॥*
*सगल भवन तेरे नामु बालहा तिऊ नामे मनि बीठुला ॥*[119]

[ मारवाड़ी को जैसे पानी प्यारा होता है, ऊँट को बालू ही भाता है। हिरन को जैसे रात्रि पहर की ध्वनि प्यारी लगती है, वैसे ही नामदेव के मन को राम भाते हैं। उसका नाम सुंदर है, उसका रूप सुंदर है, उसका अंतरंग सुंदर है, मेरे राम स्वामी ऐसे ही हैं। जैसे धरती से चन्द्र प्यारा लगता है, फूलों में भँवरे को निवास करना अच्छा लगता है। जैसे कोयल को आम प्यारा लगता है, वैसे ही नामदेव के मन को राम प्यारे लगते हैं। चकवी को जैसे मेघ प्यार है और हंस को मानसरोवर, जैसे तरुणी को अपना प्रिय प्यारा लगता है वैसे ही नामदेव के मन को राम प्यारे लगते हैं। बालक को जैसे दूध प्यारा है और चातक मुख को जैसे जल की धारा, मछली को जैसे जल प्यारा है वैसे ही नामदेव के मन को राम प्यारे हैं। साधना और सिद्धि जैसे सभी मुनि लोग चाहते हैं लेकिन कोई विरला ही उसे ग्रहण कर पाता है। सारे संसार को जैसे तेरा नाम प्रिय है वैसे ही नामदेव के मन को विट्ठल प्रिय लगते हैं। ]

उस निर्गुण राम नाम में नामदेव की एकांत निष्ठा है, वे अपनी एक दक्खिनी रचना में इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जहाँ जहाँ देखो वहीं वहीं राम हैं इसीलिए नामदेव ने नित हरि के चरण का ध्यान लगाया है। इस प्रकार नामदेव उस राम के प्रति अपनी भक्ति का प्रदर्शन करते हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार नाद को सुन कर मृग उसमें रम जाता है और उसका ध्यान मर जाने तक नहीं टूटता, जिस प्रकार बगुला मछली की ओर दृष्टि लगाए रहता है, उसी प्रकार मेरी दृष्टि भी उसी एक राम की ओर लगी हुई है –

*नाद भ्रमे जैसे मिरगाए। प्रान तजे वाको धिआनु न जाए ॥*
*ऐसे रामा ऐसे हेरऊ। राम छोड़ि चितु अनत न फेरऊ ॥*

119. वही, पृष्ठ – 246

*जिऊ मीना हेरै पसुआरा । सोना गडते हिरै सुनारा ॥*
*जिऊ बिखई हेरै पर नारी । कउड़ा डारत हिरै जुआरी ॥*
*जह जह देखऊ तह तह रामा । हरिके चरन नित धिआवै नामा ॥*[120]

[ ध्वनि के भ्रम में जैसे मृग भरमाया रहता है और प्राण त्याग कर भी उससे उसका ध्यान नहीं जाता । ऐसे ही नामदेव राम को तलाश रहे हैं, राम को छोड़ उनका चित्त अन्यत्र नहीं लग पाता है । जैसे मछुआरा मछली को तलाशता है, जैसे विषयासक्त पुरुष पराई नारी को तलाशता है । जुआरी जैसे कउड़ा डाल कर पासा तलाशता है । जहाँ जहाँ देखो वहाँ वहाँ राम हैं, इसलिए नामदेव नित ईश्वर के चरणों में ध्यान लगाते हैं । ]

नामदेव अपनी एक दक्खिनी रचना में मानव मनोवृत्ति को समझाते हुए बतलाते हैं कि त्रिलोचन ( मन ) सुनो, नामदेव कहते हैं, बालक जो पालने ( हिंडोला ) में पड़ा हुआ है उसके लिए हृदय में ध्यान लगा कर रखना अंदर बाहर से कार्य विरुद्ध है, इससे कार्य करने में मन नहीं लगता लेकिन क्या करें ? यही मानव मनोवृत्ति भी है –

*आनीले कागदु काटीले गूडी अकासामधे भरमीअले ॥*
*पंचजना सिऊँ बात बतउआ चीतु सु डोरी राखीअले ॥*
*मनु राम नामा बेधीअले । जैसे कनिककला चितु मांडीअले ॥*
*आनीले कुंभु भराइले उदक राजकुआरी पुरंदरीए ॥*
*हसत बिनोद बिचार करति है चीतु सुगागरी राखीअले ॥*
*मंदरु एकु दुआर दस जाके गऊ चरावत छाड़ीअले ॥*
*पांचकोस पर गऊ चरावत चीतु सु बछरा राखीअले ॥*
*कहत नामदेऊ सुनहु त्रिलोचन बालकु पालन पउढीअले ॥*
*अंतरि बाहरि काज बिरुधी चितु सु बारिक राखीअले ॥*[121]

120. वही, पृष्ठ – 249
121. वही, पृष्ठ – 252

[ कागज की पतंग आकाश के मध्य भरमाती है, पाँच लोगों से बातें कह हृदय में भ्रम की डोर बँधी रहती है। नामदेव के मन में राम का स्थाई निवास हो गया है जैसे सुनार का हृदय सोने में अन्य धातु को मढ़ देता है। घड़े में भरा पानी राजकुमारी के लिए शहर के भीतर लाया जाता है जिसके कारण वह हँस विनोद कर विचार करती है किन्तु हृदय में उस गागर का ध्यान किए रहती है। शरीर रूपी यह मन्दिर एक ही है इसके द्वार दस हैं, जो कोई इसके मनोभावों की गऊ चराना छोड़ देता है उसकी स्थिति ऐसी है कि पाँच कोस पर कोई गाय चराता है और हृदय में बछड़े का ध्यान किए रहता है। इसलिए नामदेव कहते हैं कि हे मन सुनो ! बालक जो पालने में पड़ा है, उसके लिए हृदय का ध्यान लगाए रखना अंदर बाहर से कार्य विरुद्ध है। ]

नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का विषय क्षेत्र बहुत बार राम के प्रति समर्पित रहा है, राम में वह सब जगत की कल्पना पाते हैं। नामदेव अपने को राम ( परमात्मा ) की पत्नी कहते हैं जो राम को आकृष्ट करने के लिए शृंगार करती है। कबीर ने भी कई बार स्वयं के लिए 'मैं राम की बहुरिया, राम मेरे भतार' कहा है। नामदेव की यह दक्खिनी रचना इसी से जुड़ी हुई है। नामदेव कहते हैं जान लो हृदय पर अब ऐसी बन आई है कि डंके की चोट के साथ गोपाल से मिला जाएगा और अब कोई स्तुति या निंदा नहीं करेगा क्योंकि नामदेव को स्त्री रंग में उनसे भेंट हुई है –

*मैं बऊरी मेरा रामु भतारु ॥ रचि रचि ताकऊ करऊ सिंगारू ॥*
*भले निंदऊ भले निंदऊ भले निंदऊ लोगु ॥ तनु मनु राम मिआरे जोगु ॥*
*बादुबिबादु काहू सिऊ न कीजै ॥ रसना रामु रसाइनु पीजै ॥*
*अब जीअ जानि ऐसी बनि आई ॥ मिलऊ गुपाल नीसानु बजाई ॥*
*उसतुति निंदा करै नरु कोई ॥ नामे स्त्रीरंगु भेटल सोई ॥*[122]

122. वही, पृष्ठ – 255

[ मैं राम की बहुरिया हूँ, राम मेरे भतार हैं। उनको रिझाने के लिए बार बार शृंगार करती हूँ। लोग भले मेरी निंदा करें लेकिन मेरा तन मन राम को समर्पित हो गया है। किसी से वाद-विवाद नहीं करना, राम नाम का रसायन पीते जाइए। अब हृदय में ऐसे भाव बन आए हैं कि प्रभु गोपाल से वाद्य ध्वनि बजाते हुए मिला जाएगा। चाहे कोई मनुष्य अब स्तुति या निंदा करे नामदेव को स्त्री रूप में अपने आराध्य से भेंट हुई है। ]

नामदेव ने अपने एकमात्र स्वामी के रूप में उसी ईश का स्मरण किया है जिनके प्रति उनकी अटूट आस्था है। अपनी एक दक्खिनी रचना में वे उनका स्मरण इस प्रकार करते हैं कि स्वयं गाते हैं, स्वयं नाचते हैं और आप ही तुरही बजाते हैं, नामदेव उस ईश के लिए कहते हैं कि तुम ही मेरे स्वामी हो जो यह अधूरा जानता है वह पूरा जान ले –

*बदहु कीन होड माघऊ मोसिउ।*
*ठाकुर ते जनु जन ते टाकुरु खेल परिऊ है तोसिऊ॥*
*आपन देउ देहुरा आपन आप लगावै पूजा।*
*जल ते तरंग तरंग ते है जलु कहन सुनन कऊ दूजा॥*
*आपहि गावै आपहि नाचे आप बजावै तूरा।*
*कहत नामदेऊ तूं मेरे ठाकुर जनु ऊरा तू पूरा॥*[123]

[ हे माधव ! तुम मुझसे क्यों नहीं बोलते हो ? ठाकुर तुम तो सब लोगों के स्वामी और सब तुम्हारे दास हैं यही जानते हुए तुम्हारा खेल भाव तो सब में व्याप्त है। अपनी देह को ही मन्दिर मान उसकी अपने आप पूजा कराते हो। जल ही से तरंग है, तरंग से ही जल है केवल कहने सुनने के लिए दोनों अलग-अलग हैं। आप स्वयं गाते हैं, नाचते हैं और आप ही तुरही बजाते हैं। नामदेव कहते हैं कि तुम मेरे स्वामी और मैं तुम्हारा सेवक हूँ जो यह अधूरा जानता है वह पूरा जान ले। ]

123. वही, पृष्ठ – 261

नामदेव अपने राम के अंतर्यामित्व को जानते हैं, इसीलिए अपनी एक दक्खिनी रचना में उसका उल्लेख करते हुए कहते हैं कि राम जगत में ऐसे अंतर्यामी हैं जैसे दर्पण में बदन प्रमाणित होता है जो प्रत्येक घट में वर्तमान है, किन्तु प्रत्यक्ष होता नहीं जान पड़ता –

*ऐसा राम राम राय अन्तर जानी । जैसे दरपन माह बदन परछाँयी ॥*
*बसे घटाघट लिपे न झिपे । बन्धन मुक्त जात न दिसे ॥*
*पानी माहे देख मुख जैसा । नामे को स्वामी विट्ठल ऐसा ॥*[124]

[ राम स्वामी ऐसे अंतर्यामी हैं जैसे दर्पण में देह की छाया प्रतिबिम्बित होती है । वह घट घट में निवास करते हैं, कहीं लुकने छिपने की बात ही नहीं है । वे बंधन मुक्त भाव से आराध्य हैं, जाति भेद उन्हें नहीं दीखता । पानी में जैसे मुख की छाया दिखाई देती है, नामदेव के स्वामी विट्ठल उन्हें ऐसे ही प्रतीत हो रहे हैं । ]

नामदेव ने विट्ठल के प्रति अपनी प्रार्थना को भी अपनी दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु का हिस्सा बनाया है । उनकी यह दक्खिनी रचना इसी ओर संकेत करती है जिसमें नामदेव प्रार्थना करते हुए कह रहे हैं कि हे विट्ठल ! मैं तैरना नहीं जानता मुझे सहायता दो, मुझे सहायता दो –

*लोभ लहरि अति नीझर बाजै । काइआ डूबै केसवा ॥*
*संसारु समुंदे तारि गोबिंदे । तारिलै बाप बीठुला ॥*
*अनिल बेडा हऊ खेवि न साकऊ । तेरा पारु न पाइआ बीठुला ॥*
*होहु दइआलु सतिगुरु मेलि तू मोकऊ पारि उतारे केसवा ॥*
*नामा कहै हऊ तरि भी न जानऊ । मोकऊ बाह देहि बाह देहि बीठुला ॥*[125]

[ लोभ लहर का नीझर बज रहा है जो अत्यंत आकर्षक है । हे केशव ! उसमें कैसे उतरा जाए ? गोविन्द मुझे इस संसार रूपी समुद्र से तार लो । विट्ठल स्वामी इससे बाहर आने में मेरी सहायता करो । हवा के

124. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 29
125. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 260

प्रवाह में नाव नहीं चला पा रहा हूँ, हे विट्ठल ! मैं तुम्हारे सहारे के बिना कैसे पार उतर सकता हूँ ? सद् गुरु से मिल हम दयालु हो उठे हैं। हे केशव ! तुम मुझे पार उतार ले चलो। नामदेव कहते हैं कि तुम्हारे बिना तैरा भी नहीं जाता है, विट्ठल मेरी सहायता करो, मेरी सहायता करो... ]

यही नहीं नामदेव ने विट्ठल के प्रति अपनी दक्खिनी रचनाओं में कृतज्ञता व्यक्त की है। यह दक्खिनी रचना इसी संदर्भ में है जब आलावंती मंदिर के सामने कीर्तन करते समय निकाल दिये जाने पर शूद्र नामदेव को मंदिर के पीछे चला जाना पड़ा और उनकी भक्ति के कारण ही मंदिर का द्वार उसी ओर घूम गया तो नामदेव ने कहा कि पण्डितों द्वारा मुझे अछूत ढेढ कहे जाते ही तुम्हारी प्रतिज्ञा और मर्यादा को चोट लग गई इसीलिए तुम्हें दयालु कृपालु कहा गया है। अत्याचार तुम्हारी दृष्टि में अपनी सीमा तक पहुँच गया तो तुमने मंदिर-द्वार नामदेव की ओर फेर दिया और पण्डितों को पीछे की ओर डाल दिया –

*मोकऊ तूं न बिसारि तू न बिसारि ॥*
*तूं न बिसारे रामईआ ॥*
*आलावंती इहु भ्रमु जोहै मुझ ऊपरि सभ कोपिला ॥*
*सूदुसूदु करि मारि ऊठाइउ कहा करऊ बाप बीठुला ॥*
*मूए हुए जऊ मुकति देहुगे मुकति न जानै कोइला ॥*
*ए पंडिआ मोकऊ ढेढ कहत तेरी पैज पिछंऊडी होइला ॥*
*तू जू दइआलु क्रिपालु कहिअतु हैं अतिभुज भइउ अपारला ॥*
*फेरि दीआ देडुरा नामे कऊ पंडीअन कऊ पिछ बारला ॥*[126]

[ नामदेव अपने आराध्य से कहते हैं कि तुम मुझे भुला मत देना, राम तुम मुझे भुला मत देना। तुम्हारे प्रति यह जो भ्रम हो गया है उसका क्रोध मुझे सहना होगा। मुझे सुध कहाँ रह गई है, मुझे जागृत करने का भार अब तुम पर ही है मेरे भगवान विट्ठल। क्या मुझे अब मेरे मरने के बाद मुक्ति दोगे ? इसे कोई क्यों जानता नहीं है। ये पण्डित लोग मुझे ढेढ ( नीच ) कहते हैं इस कारण मुझे तेरी मूर्ति-मन्दिर के पीछे जाना पड़ा।

126. वही, पृष्ठ – 262-263

तुझे जो दयालु-कृपालु कहते हैं ठीक ही है कि जो अपनी भुजाओं की शक्ति से मुझे पार उतार रहा है। तुमने देवालय का द्वार नामदेव की ओर कर दिया है और पण्डितों को अब उसके पीछे की ओर रख छोड़ा है। ]

नामदेव ने अपनी दक्खिनी रचनाओं में लौकिक और दैविक चमत्कार को भी अंतर्वस्तु का हिस्सा बनाया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि नामदेव इस रूप में ज्ञानोदय की प्रेरणा को ही अंतर्वस्तु का हिस्सा बनाते हैं, उनकी यह दक्खिनी रचना इसी संदर्भ को व्यक्त करती है –

*अणमडिआ मंदलु बाजै। विनुसावन घनहरु गाजै॥*
*बादल बिनु बरखा होई। जउ ततु बिचारे कोई॥*
*मोकउ मिलिउ रामु सनेही। जिह मिलिए देह सुदेही॥*
*मिलि पारस कंचनु होइआ। मुख मनसा रतनु परोइआ॥*
*निजभाऊ भइआ भ्रमु भागा। गुर पूछे मनु पतिआइआ॥*
*जल भीतरि कुंभ समानिआ। सभ रामु एकु करि जानिआ॥*
*गुरु चेले है मन मानिआ। जब नामै ततु पछानिआ॥*[127]

[ बिना मढ़ा हुआ ढोलक बज उठता है, बिना सावन के मेघ गरज रहे हैं। बादल के बिना बरसा हो रही है, इस तत्त्व लीला का कोई विचार करे। मुझे तो राम के रूप में स्नेही मिल गया है, जिससे सदेह मिलने की इच्छा हो रही थी वह भेंट गया है। धातु जैसे पारस से मिल कर सोने में बदल गया हो मेरी स्थिति कुछ ऐसी हो गई है। मुख मन से रत्न पिरो दिया गया है। और अन्तर्मन का भ्रम भाग गया है। गुरु के पीछे पीछे मेरा मन भी उसकी लगन में लग गया है। जल के भीतर जैसे घड़ा समाहित होता है, राम सबको एक समान जानते हैं। गुरु और चेले की संगत तो मन के मानने से है, जब नामदेव ने इस तत्त्व को पहचान लिया तो सब जान गए। ]

127. वही, पृष्ठ – 244-245

नामदेव ने अपनी दक्खिनी रचनाओं में जीवन व्यापार के विषय की ओर भी संकेत किया है। दक्खिनी की उनकी यह रचना इसी संदर्भ में है, जिसमें भ्रम के परिणाम की ओर संकेत किया गया है, जो मनुष्य को सही मार्ग पर चलने नहीं देता –

*काएं रे मन बिखिआ बन जाई ॥ भूलौ रे ठगमूरी खाई ॥*
*जैसे मीनु पानी महि रहै ॥ काल जाल की सुधि नहीं लहै ॥*
*जिहबा सुआदी लीलित लोह ॥ ऐसे कनिक कामनी बाधिउ मोह ॥*
*जिउ मधुमाखी संचै अपार ॥ मधु लीनौ मुखि दीनी छारु ॥*
*गउ बाछ कऊ संचै खीरु ॥ गला बांधि दुहि लेइ अहीरु ॥*
*माइआ कारन स्रमु अति करै ॥ सो माइआ लै गाडै धरै ॥*
*अति संचै समझै नहीं मूड ॥ धनु धरती तनु होइ गइउ धूडि ॥*
*काम क्रोध त्रिसना अति जरै ॥ साध संगति कबहु नहि करै ॥*
*कहत नामदेउ ताचा आनि ॥ निरभै होइ भजीऐ भगवान ॥*[128]

[ मन क्यों विषय वासनाओं के वन में चला जाता है, भूल कर वह फिर फिर क्यों ठगा जाता है। जैसे मछली पानी में रहती है फिर भी उसे मृत्यु का बोध नहीं रहता है। जिह्वा जैसे स्वाद के लिए ललचाती है वैसे ही वयस्क कामिनी के बंधन मोह में पड़ जाता है। जैसे मधुमक्खी अपार मधु का संचय करती है और मधु को मुख में लेकर छोड़ देती है। गाय बछड़े के लिए दूध का संचय करती है लेकिन उसका गला बांध कर अहीर दूध दूह लेता है। जिस माया के लिए लोग अधिक श्रम करते हैं वह माया यहीं इस धरा पर ही रह जाती है। मूढ़ व्यक्ति इसी तरह अधिक संचय के फेर में लगा रहता है लेकिन उसे क्या पता कि तन के मिटते ही सब धन धूल की तरह हो जाता है। जिसके भीतर काम, क्रोध और तृष्णा की ज्वाला जलती रहती है वह मनुष्य इसके कारण साधु की संगति कभी कर नहीं पाता। नामदेव कहते हैं कि उसके आने न आने को भूल निर्भय हो कर भगवान का भजन करो। ]

128. वही, पृष्ठ – 261

नामदेव ने अपनी दक्खिनी रचनाओं में गुरु महिमा को बड़ा महत्त्व दिया है। उनकी ये दक्खिनी रचना इस संदर्भ में दृष्टव्य है जिसमें नामदेव कहते हैं कि गुरु ने मेरे जन्म को सफल कर दिया, उसने मेरे दुख भुला कर मुझे अपने सुख के हृदय में ले लिया –

*सफल जनमु मोकउ गुरु कीना। दुख बिसारि सुख अंतरि लीना॥*
*गिआन अंजनु मोकउ गुरु दीना। राम नाम बिनु जीवनु मन हीना॥*
*नामदेइ सिमरनु करि जानां। जगजीवन सिउ जीऊ समानां॥*[129]

[ मेरे जनम को गुरु ने सफल बना दिया है, उसने मुझे दुख भुलाने की बात कह स्वयं के सुख अंतर में भर लिया है। ज्ञान रूपी दृष्टि मुझे गुरु से ही प्राप्त हुई है, राम नाम के बिना मन और जीवन दोनों सार हीन हो गए हैं। नामदेव इसी कारण भगवान के नाम स्मरण को आधार मानते हैं कि संसार में सभी जीव उसके लिए एक समान हैं। ]

नामदेव ने अपनी दक्खिनी रचनाओं में निहित भक्ति में अपने स्त्री रूप का ज़िक्र किया है और विरह की बेचैनी के भाव व्यक्त किए हैं। नामदेव ने मिलन-उत्कंठा को जिस शब्द से व्यक्त किया है, वह 'तालबेली' यानी व्याकुलता है। इसमें प्रेम की सघनता है। यह दक्खिनी रचना इसी से संबंधित है जिसमें नामदेव कहते हैं कि जैसे ताप से निरमल घाम आता है वैसे ही राम नाम के बिना नामदेव विरह व्यथित होता है –

*मोहि लागती तालाबेली। बछरै बिनु गाइ अकेली॥*
*पानीआ बिनु मीनु तलफै। ऐसे रामानामा बिनु बापरो नामा॥*
*जैसे गाइका बाछा छूटला। थन चोखाता माखनु छूटला॥*
*नामदेऊ नाराइणु पाइआ। गुरु भेटल अलखु लखाइआ॥*
*जैसे विखै हेत परनारी। ऐसे नामे प्रीति मुरारी॥*

129. वही, पृष्ठ – 248

*जैसे तापते निरमल घामा । तैसे रामनामा बिनु बापुरो नामा ॥*[130]

[ नामदेव कहते हैं कि उन्हें 'तालाबेली' लगी हुई है, जिससे व्याकुलता और अधीर मनोवृत्ति का बोध हो रहा है जैसे बछड़े के बिना अकेली गाय व्याकुल हो उठती है । पानी के बिना मछली तड़प रही है, राम नाम के बिना नामदेव की ऐसी ही व्याकुल दशा है । जैसे गाय का बछड़ा छूट जाए वैसे मुरारी से माखन अलग हो गया है । नामदेव भगवान नारायण को पा लिए हैं अब गुरु के भेंट से अलख की अनुभूति भी हो जाएगी । जैसे विषयानुरागी पराई नारी को ढूँढ़ता है, नामदेव भी ऐसे ही मुरारी से प्रीत लगाए हुए हैं । जैसे गर्मी के ताप से निर्मल घाम आता है वैसे ही नामदेव को राम नाम के बिना व्याकुल दशा का अनुभव होता है । ]

नामदेव की दक्खिनी रचनाओं में ईश तत्त्व के आधार के साथ मनुष्य के लिए आदर्श स्वभाव को सर्वप्रधान वस्तु के रूप में अभिव्यक्त किया गया है, उनकी यह दक्खिनी रचना इसी संदर्भ में है जिसमें नामदेव बतलाते हैं कि आदर्श स्वभाव बिना मनुष्य उसी प्रकार शोभा नहीं देता जैसे बिना नाक वाला व्यक्ति सभी शृंगारों से युक्त रहने पर भी शोभता नहीं है –

*परधन परदारा परहरी ॥ ताके निकटि बसै नरहरी ॥*
*जो न भजंते नारइणा ॥ तिनका मे न करऊ दरसना ॥*
*जिनके भीतरि है अंतरा ॥ जैसे पसु तैसे उइ नरा ॥*
*प्रणवति नामदेऊ नाकहि बिना ॥ ना सोहै बतीस लखना ॥*
*दूधु कटोरै गडवै पानी ॥ कपल गाइ नामै दुहिआनी ॥*
*दूधु पीऊ गोबिंदे राइ ॥ दूधु पीऊ मेरो मनु पतिआइ ॥*[131]

[ पराए धन पर पर्दा डाल कर प्रिय हरि से लगन लगाने वाले के निकट ही नारायण का निवास होता है । जो नारायण को नहीं भजता है उनका नामदेव दर्शन भी नहीं करना चाहते । जिनके भीतर उस ईश्वर के लिए

130. वही, पृष्ठ – 250
131. वही, पृष्ठ – 255

भेद है वे वैसे ही हैं जैसे अन्य पशु आदि। नामदेव कहते हैं कि बिना नाक के कोई शोभा नहीं देता, चाहे उसमें और बत्तीस लक्षण ही क्यों न आ जाएँ। दूध के कटोरे में पानी रख के कामधेनु गाय को नामदेव दूह लेते हैं। गोविंद स्वामी दूध पी लो, दूध पी कर तुम मेरा मन रख लो कि तुम्हारी भी मुझ पर प्रीत लगी हुई है। ]

नामदेव की दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु के पड़ताल से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने दक्खिनी में बहुत कम लिखते हुए भी बहुत क़ायदे की बातें की हैं। प्रेम को लेकर लिखी गई नामदेव की यह दक्खिनी रचना एक ऐसी ही उपलब्धि है जिसमें वे कहते हैं कि वे उस नरहरि का ध्यान लगाते हुए उसके भजन गाते हैं जिसके कारण वे सांसारिक पद-प्रतिष्ठा खो कर परमार्थ को प्राप्त कर लेते हैं –

*राम आपणा पयाणा राम आपणा पयाणा। नामदेव मूरख लोग सयाना॥*
*जब हम हिरदे प्रीत बिचारी। रजबल छाँडी के भये भिखारी॥*
*जब हरि कृपा करी हम जाणा। तब था चेरा अब भये राणा॥*
*नामदेव कहे मैं नरहरी गायो। पद खोवत परमारथ पायो॥*[132]

[ अपना राम ही प्रयाण है, नामदेव कहते हैं कि मूर्ख लोग भी सयाने होते हैं। जब हम हृदय में प्रेम तत्त्व का विचार करते हैं तो रजोगुण छोड़ कर भिखारी ( अति सामान्य ) हो जाते हैं। जब मैंने हरि की कृपा दृष्टि को जाना तो पता चला कि तब मैं सेवक था अब स्वामी हूँ। नामदेव कहते हैं कि वे उस नरहरि का ध्यान लगाते हुए उसके भजन गाते हैं जिसके कारण वे सांसारिक पद-प्रतिष्ठा खो कर परमार्थ को प्राप्त कर लेते हैं। ]

नामदेव अपनी दक्खिनी रचनाओं में आराध्य का स्मरण करते हुए नाम स्मरण की महिमा को विशेष महत्त्व देते हैं, उनकी कई दक्खिनी रचनाएँ इसी संदर्भ में हैं। नामदेव का मानना है कि अपने आराध्य के ध्यान में लगा मन एक ही है, अपने जीवन की दशा भी अंत में एक ही है, इसलिए उस

132. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 23-24

आराध्य के प्रति एकनिष्ठ व्रत धारण करना चाहिए। उस आराध्य का नाम जहाज रूपी साधन की तरह है, जिसके सहारे संसार रूपी भवसागर पार किया जा सकता है – *'एकै मन एकै दसा, एकै ब्रत धरिये। नामदेव नाम जहाज है, भवसागर तरिये॥'*

इनकी दक्खिनी रचनाओं में ईश्वर की भाव लीला के वर्णन के साथ उसकी अंतर्वस्तु में अपने आत्म परिचय का भी उल्लेख मिलता है। यही नहीं वे जीवन-जगत व्यापार के साथ वैराग्य का भी वर्णन करते हैं। नामदेव अपनी दक्खिनी रचनाओं में संत स्वभाव और नारी का भी वर्णन करते हैं। उनकी यह दक्खिनी रचना इसी संबंध में है –

*घरकी नारि तिआगै अंधा॥ परनारी सिऊ घालै धंधा॥*
*( जैसे ) सिंबलु देखि सूआ बिगसाना॥ अंतकी बार मूआ लपटाना॥*
*वापी का घरु अगने माहि॥ जलत रहै मिटवे कब नाहिं॥*
*हरि की भगति न देखै जाइ॥ मारगु छोड़ि अमारगि पाइ॥*
*मूलहु भूला आवै जाइ॥ अम्रित डारि लादि बिखु खाइ॥*
*जिऊ बेस्वा के परै अश्वारा॥ कापरु पहिरि करहि सींगारा॥*
*पूरे ताल निहाले सास॥ बाके गले जम का है फास॥*
*जाके मसतकि लिखिउ करमा॥ सो भजि परि है गुर की सरना॥*
*कहत नामदेऊ इहु बीचारू॥ इइ बिधि संतहु ऊतरहु पारू॥*[133]

[ घर की स्त्री के आगे अंधा हो जाता है और पराई स्त्री को आसक्ति की नज़र से देखने का काम करता है। जैसे सेंबल फूल देख कर सुआ ( तोता ) आकृष्ट रहता है, और अंत समय में माया के फेर में फँस जाता है। पिता के घर आँगन में सब अबोध बने रहते हैं। हरि की भक्ति देखी नहीं जाती, मार्ग छोड़ अमार्ग पर चल पड़ते हैं। इससे मूल भी भुला आते हैं, जैसे अमृत छोड़ कर कोई विष का पान कर ले। जैसे वेश्या को मुजरा करना पड़ता है और वह कपड़ा पहन शृंगार रचाती है। फिर पूरे ताल बद्ध होकर नाच उठती है,

133. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 257

उसके गले में भी यमराज की फाँस पड़ी हुई है। जिसके माथे पर कर्म लिखे हैं वही गुरु की शरण में भजन कर रहे हैं। नामदेव विचार कर कहते हैं कि इस इस विधि से संत लोग इस संसार से पार उतर जाते हैं। ]

नामदेव ने अपनी दक्खिनी रचनाओं में लौकिक और दैविक चमत्कार का भी वर्णन किया है। जिसमें विट्ठल को दूध पिलाना, मंदिर-द्वार घूम जाना, बादशाह से झगड़े का निबेड़ा करना, मरी गाय का जीवित होना, हाथी का डरना, नदी जल से सूखी शय्या निकलना, हरि द्वारा नामदेव की छान-झोंपड़ी को बनाना, कुत्ते को रोटी खिलाना, मृत बैल का जीवित हो बैलगाड़ी चलाना, पत्थर की प्रतिमा को हँसाना, विप्र वेशधारी हरिजी का एकादशी के दिन भिक्षा में अन्न माँगना इत्यादि चमत्कारी घटनाओं का वर्णन प्रमुख है। आगे ऐसी ही अंतर्वस्तु और चमत्कार की बातों से संबद्ध नामदेव की बादशाह से बातचीत से जुड़ी उनकी यह दक्खिनी रचना प्रस्तुत है –

*सुलतानु पूछै सुनु बे नामा। देखऊ राम तुमारे कामा॥*
*नामा सुलताने बाधिला। देखऊ तेरा हरि बीठुला॥*
*बिसमिलि गऊ देहु जीवाइ। ना तरु गरदनि मारऊ ठाइ॥*
*बादिसाह ऐसी किऊ होइ। बिसमिलि कीआ न जीवै कोइ॥*
*मेरा किआ कछू न होइ। करिहै रामु होइहै सोई॥*
*बादिसाहु चढ़िउ अहंकरि। गज हसती दीनों चमकारि॥*
*रुदनु करै नामेकी माइ। छोडि राम की न भजहि खुदाइ॥*
*ना हऊ तेरा पूंतडा न तू मेरी माइ। पिंडु पडै तऊ हरिगुन गाइ॥*
*करै गजिंदु सुंड की चोट। नामा ऊबरै हरि की ओट॥*
*काजी मुलां करहि सलामु। इनि हिंदू मेरा मलिआ मानु॥*
*बादिसाह बेनती सुनेहु। नामे सर भरि सोना लेहु॥*
*मालु लेउ तऊ दोजकि परऊ। दीनु छोड़ि दुनिआ कऊभरऊ॥*
*पावहु बेडी हाथहु ताल। नामा गावै गुन गोपाल॥*
*गंग जमुन जऊ उलटी बहै। तऊ नामां हरि करता रहै॥*
*सात घड़ी जब बीती सुणी। अजहु न आइउ त्रिभवणधणी॥*
*पाखंतण बाज बजाइला। गरुड चडे गोबिंद आइला॥*

*अपने भगतपरि की प्रतिपाल । गरुड़ चडे आए गोपाल ॥*
*कहहि त मुई गऊ देऊ जीआइ । सभु कोई देखै पतिआइ ॥*
*नामा प्रणवै सेल मसेल । गऊदुहाई बछरा मेलि ॥*
*दूधहि दुहि जब मटुकी भरी । ले बादिसाह के आगे धरि ॥*
*बादिसाह महल महि जाइ । अऊघट की घट लागी आइ ॥*
*काजी मुलां बिनती फुरमाइ । बखसी हिंदू मै तेरी गाइ ॥*
*नामा कहै सुनहु बादिसाह । इहु किछु पतिआ मुझै दिखाइ ॥*
*इस पतिआ का इहै परवानु । साचि सील चालहु सुलितान ॥*
*नामदेऊ सभु रहिआं समाइ । मिलि हिंदू सभ नामे पहि जाइ ॥*
*जऊ अबकी बार न जीवै गाइ । त नामदेव का पतीआ जाइ ॥*
*नामे की कीरति रही संसारि । भगति जनाले उधरिया पारि ॥*
*सगल कलेस निंदक भइआ खेदु । नामे नाराइनु नाहीं भेदु ॥*[134]

संत साहित्य में नाम स्मरण की महिमा को बड़ा महत्त्व दिया गया है। नामदेव ने अपने आराध्य के नाम स्मरण के संबंध में दक्खिनी में यह रचना की है, इसकी अंतर्वस्तु में नाम महिमा का यह कहते हुए ज़िक्र है कि हरि के नाम स्मरण के समान भक्ति हेतु और कोई दूसरा काज नहीं है –

*जो कोई वसुधा दान दे आवे । पूर्ण जज्ञ करे करावे ।*
*तीरथ बरथ करे असनान । नहिं नहिं हरि-नाम समान ॥*
*जो कोई जावे हिमालय गले । काशी करवत ले कर मरे ।*
*दसवें द्वारे काढे प्राण । नहिं नहिं हरि-नाम समान ॥*
*काय-कष्ट दे कलेवर जीवे । ना कुच खावे ना कुच पीवे ।*
*गगन मंडल मों जोग ध्यान । नहिं नहिं हरि-नाम समान ॥*
*अगली-पिछली बात बनावे । नेम-धरम में मन छुपावे ।*
*चारों बेद पढ़े पुराण । नहिं नहिं हरि-नाम समान ॥*
*सद् गुरु की जद कृपा भई । प्रेम भगद हरदे धर लई ।*
*कहे 'नामदेव' भज भगवान । नहिं नहिं हरि-नाम समान ॥*[135]

134. वही, पृष्ठ – 257-258
135. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 16-17

[ जो अगर कोई धरती का दान दे दे, पूर्ण यज्ञ करा दे, तीर्थ व्रत करके स्नान करे फिर भी यह सब हरि के नाम स्मरण के समान नहीं है। जो अगर कोई हिमालय जाकर तप करे, काशी करवट ले कर प्राण त्याग करे, शरीर के दसवें द्वार से अपने प्राण निकाले फिर भी यह सब हरि के नाम स्मरण के समान नहीं है। जो कोई शरीर को कष्ट देकर बिना वस्त्र धारण किए रहे, न कुछ खाए और न कुछ पीए, मस्तिष्क में योग का ध्यान लगाए फिर भी यह सब हरि के नाम स्मरण के समान नहीं है। जो कोई आगे-पीछे की बात बनाता रहे, नियम-धर्म में मन को लगाए रखे, चारों वेदों और पुराण का अध्ययन करे फिर भी यह सब हरि के नाम स्मरण के समान नहीं है। अगर सद् गुरु की कृपा हो जाए, प्रेम भक्ति हृदय में समाहित हो जाए तो नामदेव कहते हैं कि भगवान का भजन कर क्योंकि हरि के नाम स्मरण के समान कुछ नहीं है। ]

यही कारण है कि नामदेव अपने आराध्य को कई नामों से संबोधित करते हैं। इन नामों में विट्ठल और राम प्रमुख हैं। इनके राम निर्गुण, निराकार, अव्यक्त, अवगति, निरंजन, गुणातीत और सर्वव्यापी हैं। सभी जीव उनसे उत्पन्न हैं, सभी में उनका निवास है।

इनकी दक्खिनी रचनाओं में राम की स्तुति के साथ उनकी महिमा का भी वर्णन मिलता है। नामदेव की इस दक्खिनी रचना में इसी का ज़िक्र है कि सब जीवों के दाता राम ही माता हैं, राम ही पिता हैं ये नामदेव छींपी कहता है कि तूँ उसी की पुकार लगा –

*राम नाम वै श्रवण सुनीवो, सलील मोह्ये मैं वही नहीं जाईवो।*
*अकथ कथ्यो न जाई कागदी लिख्यो न भाई, सकल भुवनपति मिल्यो सहज भाई।*
*राम माता राम पिता राम सब ही जीवदाता, म्हणत नामा यो छीपी कहे रे पुकार गीता।*[136]

[ राम नाम का स्मरण सुनो, उनकी लीला के साथ बँधे मोह में हम कहीं नहीं जा सकते। भाई अकथ कथा कही नहीं जाती, कागज पर भी उसे नहीं लिखा जाता, भाई सकल संसार के स्वामी सहज ही हमें मिल

136. वही, पृष्ठ – 24

जाते हैं। राम ही माता, राम ही पिता, राम ही सब जीवों के दाता हैं। नामदेव छींपी कहते हैं कि अपने गीतों में उसकी पुकार कर। ]

नामदेव ने अपनी दक्खिनी रचनाओं में जीवन-रहस्य को भी अंतर्वस्तु का हिस्सा बनाया है, यही नहीं नामदेव की दक्खिनी रचनाओं में जीव और माया का भी वर्णन मिलता है। उनकी इस रचना में इसका ज़िक्र इस प्रकार है कि कच्चे घड़े रूपी जीव में आत्मा पानी की तरह भरा हुआ है जिसका बिना सत्य के उद्धार नहीं है, नामदेव कहते हैं सुनो भाई, साधु की संगत को ही धारण करना –

*मन पंछी या मत पड पिंजरे, संसार माया जाल रे।*
*तन जोबन रूप कारण, न कर गर्व गँवार रे।*
*एक दिन तो तुझको मरना, सदा झमकत काल रे।*
*कुम्भ काच्या नीर भरिया, बिन सत नहिं बार रे।*
*कहत नामदेव सुन भई साधू, साधू संगत धरना रे।*[137]

[ मन रूपी पंछी पिंजरे में मत पड़। यह संसार माया का जाल है। गँवार की तरह तन, यौवन और रूप के सौंदर्य के कारण स्वयं पर गर्व मत करो। एक दिन तो तुझे भी मरना ही है, इस संसार में मृत्यु का काल सदैव झमकता रहता है। कच्चे घड़े में पानी भर कर रखने से उसकी सिद्धि नहीं हो जाती। नामदेव कहते हैं कि अरे भाई सुनो, तुम साधु की संगति को ही धारण करो। ]

नामदेव ने अपनी एक दक्खिनी रचना में संत स्वभाव की संगति का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है कि संत की छाया और संत की माया में रह कर ही संत संगति से वैकुंठ पाया जा सकता है –

*सन्त सू लेना सन्त सू देना, सन्त संगती दुस्तर तरना।*
*सन्त की छाया सन्त की माया, सन्त संगतीं बैकुण्ठ पाया।*
*कहा करूँ जग देख अन्धा, तेजी आनन्द बिचारे धन्दा।*

137. वही, पृष्ठ – 31

*असन्त संगतीं नामा कबहु न जाई, संगतीं में रह्या समाई ।*[138]

[ संतों से ही ग्रहण किया गया और संतों को ही दे दिया गया । संत संगति से दुष्कर भी पार उतर जाता है । संत की छाया और संत की माया यह है कि संत संगति से वैकुंठ पाया जा सकता है । यह संसार अपनी दृष्टि से देख नहीं पाता, आनंद की तीव्रता को क्या जान पाएगा । नामदेव कहते हैं कि वे असंत की संगत में कभी नहीं जा सकते इसलिए सदैव संत संगति में समाए रहते हैं । ]

संसार में जीव की गति क्या है ? जनम-मरण का चक्र क्या है ? माँ के गर्भ की दशा क्या ? इन सबका परिचय भी नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का विषय है, इस संबंध में उनकी रचना यह कहती है –

*उत्तम नर-तनु पाया रे भाई, गाफल क्यौं हुवा दिवाने जू ।*
*सावध सावध भज ले रे राजा, नहिं आवे ऐशी घड़ी जू ।*

---

*मा भैन और जोरू लड़के, सुख के खातर सारे जू ।*
*अकेले आना अकेले जाना, सब झूठी माया पसरी जू ।*
*लख चौर्यासी का फेरा आवेगा, तब चुप बैठे बन्दे जू ।*
*फिरता फिरता जीव दमता है बाबा, कौन रखे तेरे तन कू जू ।*
*जिस माय उदरी जन्म लीयगा, तेरे संगत दुःख उन कू जू ।*
*गरभी की यातना सुन ले रे भाई, नव मास बन्धन डारे जू ।*
*नहिं जगा हलने-चलने कू बाबा, छुड़ाने कू कोई नहिं आवे जू ।*
*आग लगी क्या देखत अंधे, कायके खातर सोया जू ।*

---

*ऐसी बात सुनके 'नामा' सावध हुवा, गुरु के पाव मिठी डारी जू ।*
*मैं अनाथ शरण भये तुज कू, आप जो मेरी लाज राखी जू ।*[139]

नामदेव की दक्खिनी रचनाओं में निहित ईश के प्रति समर्पण की भावना बेहद आत्मीय भाव अभिव्यक्त करती है, अवश्य ही यहाँ उसका ज़िक्र आवश्यक जान पड़ता है –

---

138. वही, पृष्ठ – 40
139. वही, पृष्ठ – 14 से 16 तक

*जहाँ तुम गिरीवर तहाँ हम मोरा, जहाँ तुम चन्दा तहाँ मैं चकोरा।*
*जहाँ तुम तरुवर तहाँ मैं पंछी, जहाँ तुम सरवर तहाँ मैं मच्छी।*
*जहाँ तुम दीवा तहाँ मैं बत्ती, जहाँ तुम पंथी तहाँ मैं साथी।*
*बेल के पाती शंकर पूजा, 'नामदेव' कहे भाव नहिं दूजा।*[140]

[ जहाँ तुम पर्वत हो वहाँ मैं सँकरा रास्ता हूँ, जहाँ तुम चाँद हो वहाँ मैं चकोर पक्षी हूँ। जहाँ तुम तरुवर हो वहाँ मैं पंछी हूँ, जहाँ तुम सरोवर हो वहाँ मैं मछली हूँ। जहाँ तुम दीपक हो वहाँ मैं बत्ती हूँ, जहाँ तुम पथिक हो वहाँ मैं तुम्हारा ही साथी हूँ। बेल के पत्तों से भगवान शंकर की पूजा होती है नामदेव कहते हैं कि इन बातों का कोई दूसरा भाव नहीं है। ]

नामदेव अपनी दक्खिनी रचनाओं में सामाजिक भेदभाव का विरोध जतलाते हैं, उनकी यह दक्खिनी रचना इसी से संबद्ध है जिसमें वे कहते हैं कि अलग-अलग वर्ण की गायों का दूध एक वर्ण का है फिर तुम कैसे ब्राह्मण और हम कैसे शूद्र हो गए –

*हीन दीन जात मोरी पंढरी के राया, ऐसा तुमने नामा दरजी कायकू बनाया।*
*टाल बिना लेके नामा देउल में गया, पूजा करते बह्मन उन्नें बाहर ढकाया।*
*देउल के पीछे नामा अल्लरव पुकारे, जिदर जिदर नामा उदर देउल ही फीरे।*
*नाना वर्ण गवा उनका एक वर्ण दूध, तुम कहाँ के बह्मन हम कहाँ के सूद।*
*मन मेरो सुई तन मेरो धागा, खेचरजी के चरन पर नामा सिंपी लागा।*[141]

[ मेरी जाति हीन-दीन है, मैं पंढरपुर का हूँ, तुमने ऐसा नामदेव दर्ज़ी काहे को बनाया है। नामदेव जब देवालय में गया तो पूजा कराते हुए ब्राह्मणों ने उसे बाहर भगा दिया। देवालय के पीछे नामदेव ने एक स्वर में अपने अल्लरव को पुकारा, फिर जिधर जिधर नामदेव जाते थे देवालय का मुख्य द्वार उसी ओर घूम जाता था। नाना वर्ण की गायों का दूध एक वर्ण का है फिर तुम कैसे ब्राह्मण और हम कैसे शूद्र हो गए ?

140. वही, पृष्ठ – 17-18
141. वही, पृष्ठ – 18

नामदेव कहते हैं कि मेरा मन सूई है और तन धागा है, नामदेव सिंपी का ध्यान गुरु खेचर जी के चरणों में लग गया है। ]

ऊपर हमने नामदेव की दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु से परिचय पाया। अवश्य ही यह नामदेव के जीवन और समाज के साथ उनकी रचनाशीलता को जानने का भी अवसर था। जिसमें रचनाओं के तत्कालीन विषयों की विभिन्नता के साथ हमें नामदेव की दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु का भी ज्ञान हुआ। हम कह सकते हैं कि किसी भी भाषा और समय की रचनाओं की तुलना में नामदेव की दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु की परिपक्वता को कमतर नहीं माना जा सकता। अपने विषय के साथ अंतर्वस्तु की बुनावट में नामदेव की रचनाएँ कलात्मक हैं। यहाँ "कबीर की तरह नामदेव की रचनाओं में भी उच्च वर्गीय लोगों के आचार-विचार तथा आस्थाओं की आलोचना है, अंतर इतना ही है कि कबीर सब कुछ को अस्वीकार करके चलते हैं और नामदेव बहुत कुछ स्वीकार करके आलोचना करते हैं।"[142]

## गोंदा की दक्खिनी रचनाएँ और उसकी अंतर्वस्तु

गोंदा भी दक्खिनी रचनाओं के काल विभाजन के अंतर्गत आरंभिक काल ( 13वीं से 15वीं शताब्दी ) में ही आते हैं। गोंदा का जीवन सन् 1300-1351 ई. तक माना जाता है। जो इनकी रचनाओं का समय भी है।

गोंदा की दक्खिनी रचनाओं पर बात करने के लिए यहाँ गोंदा की एक प्रसिद्ध दक्खिनी रचना का उल्लेख करना आवश्यक है जो समसामयिक शासक और नामदेव से संबंधित है। कहा जाता है कि एक बार दिल्ली-सुल्तान ने नामदेव को बन्दी बना लिया था और जब नामदेव ने चमत्कार दिखलाया तो

142. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, वही, पृष्ठ – 51-52

सुलतान आश्चर्य चकित हो गया और उन्हें मुक्त कर दिया। इस दक्खिनी रचना में इसी घटना को कई चरणों में सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है जिसमें सर्वप्रथम गणेश-वंदना की गई है। घटना के वर्णन के साथ कथोपकथन चलता है। संवाद के कारण जहाँ मानसिक भावों का चित्रण हुआ है, वहाँ कथा में भी सजीवता आई है, जैसे नामदेव की मनोदशा का चित्रण। यहाँ उसी दक्खिनी पद का आरंभिक अंश प्रस्तुत है –

*गजानन गौरी सूत लाल अंग पर बभूत, तेरे मुख वचनामृत उसे जमदूत भागत है*
*विद्याभरी दन्दुल पेट उस पर साँप की लपेट, विघन करत है चपेट पकड़ फेट काल की*
*नामा दर्जी जालम बिठू राजा का गुलाम, हुआ दुनिया में बदनाम उने नाम डुबाया*
*नामा प्यारा है भगत उसे जानत है जगत, बम्मन आया धूँडत धूँडत लगत लगत गाँव मों*
*बम्मन कहे नामदेव मुजे पूजना भूदेव, इती बात मुजे देव बहा देव गंगा मों*
*मानो बिनन्ती महाराज चलो पतितन के काज, नामा कहे बम्मन राज न बाजे इन बातन सों*
*नामा नहिं माने बात बम्मन बैठा दिन रात, हुकुम दिया दीनानाथ तब संग चल दिया*
*चले मजल दर मजल आया बेदर के मिसल, वहाँ हुई सो नक्कल वो सकल तुम सुनो*[143]

गोंदा ने गणेश की वन्दना के पश्चात कथा आरंभ की है। यह वर्णन अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है, यद्यपि कहानी सरल एवं सीधे सादे शब्दों में आगे बढ़ी है। फिर भी गोंदा ने जो चित्रांकन किया है वह दर्शनीय है –

*कोस आदे कोस पर नामदेव का लश्कर, बादशहा बैठा निकल कर नज़र कर देखते*
*कहे कासी पण्डत लाल झेंडे बहुत, पायदल जावे तहत क्या सरयत खबर लाव*
*करी कुरान सो सलाम भेजो फौज वो तमाम, कौन क्या करेगा काम तुम बेकाम मत रहो*
*आई फौज किया कोट जैसा खेत का सगोट, कहे कहाँ के तुम भट थाट वाद्य जाहो*
*नामा कहे सुनो भाई ये तो बम्मन गदाई, नामदेव कौन है बेदरशाही जानते ?*
*उसे कहे नामदेव राहा छोड़ो जाने देव, कहे हुकुम आने देव फेर देव जाने कू*
*अर्जी लिखी फौजदार ले पोंचे जिलिबदार, जाके देव दरबार चोपदार के कहिने*

143. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 45

*कासी पण्डत के पास आन पोहोंची इत्तलास, नज़र गुज़राई खास करे ख्यास पूछ के*[144]

इस दक्खिनी रचना में घटना का वर्णन संवादात्मक है। अतः भावों का चित्रण सुंदर ढंग से व्यक्त हुआ है। संवाद स्वाभाविक ढंग से आगे बढ़े हैं। कथा में सजीवता का गुण विद्यमान है जो नाटकीयता से भी मंडित है –

*पंडत करे जिकीर सुनो हिन्दू फकीर, हम लोकन के पीर पण्ढरपुर में रहते हैं*
*बादशाह करे गलत होते पीर आजमत, बुला लाव इस वक़्त करामात देखणें*
*पंडत करे तसलीमात हजरत भली नहीं बात, नामदेव कहे मात किसन, नाथ, कन्हैया*[145]

जब सुलतान ने नामदेव को चमत्कार दिखलाने का आदेश दिया तो उसका चित्र गोंदा ने इस प्रकार सुंदर ढंग से व्यक्त किया कि देखते ही बनता है –

*उसका नाम मत लेव उसकी रहा मत जाव, मेरा कहना खातर लाव नहीं तो नाव डुबेगी*
*उसे करोगे बदफ़ैल बुरी होयगी नक्कल, अब जावेगी अक्कल सकल राज डूबेगा*
*हत्ती, घोड़े, दौलत, दक्खन मुलूख, बाछायत, बेदर सरीखा तख़त इस वक़्त जायगा*
*बादशहा करे गल्लत सरक चल मादरबख़त, पंडत कहे आयी मौत गई कुव्वत अकल की*
*कुटल सामने से टल जा दूर हो निकल, भेजो दस-बीस मोंगल बम्मन सकल पकड़ लाव*
*नामा लाया दरबार सात बम्मन दो सौ चार, सारे दरबार मों पुकार मार मार बम्मन कूँ*[146]

इस दक्खिनी रचना में गोंदा ने फिर नामदेव द्वारा किए चमत्कारों के बारे में आगे बतलाया है –

*अर्जी पोंचावे हुज़ूर नामदेव लाया नज़र, इसके बाबे क्या मजकूर करो अर्जी अर्ज बेगों*
*बादशहा कहे जलदी जाव गाई कसाई कू बुलाव, नामदेव कूँ बिठलाव नियत पोंचावे गाँव कू*
*उसके आगे काटी गाय बम्मन करे हाय हाय, नामा कहे प्रभुराय ! ये बुलाय, तुम सुनो*
*बादशहा कहे लो जान नहीं तो करूँ मुसलमान, झुठा करता है तुफान फिर फकीर कहलावते*
*किदर रह्या पंढरपुर मेरा वसीला है दूर, कौन कहेगा हुज़ूर ये जरूर हकीकत*[147]

144. वही, पृष्ठ – 45-46
145. वही, पृष्ठ – 46-47
146. वही, पृष्ठ – 47
147. वही, पृष्ठ – 47-48

अपनी इस दक्खिनी रचना में आगे गोंदा बतलाते हैं कि नामदेव तुरंत भगवान की शरण में चले जाते हैं और प्रार्थना करते हैं, यहाँ भक्त और भगवान दोनों की दशा वर्णनातीत है –

*ये तो पापी चंडाल इन्नें बुरा किया हाल, मेरे अब्रू का काल गोपाललाल जल्दी आव*
*नामा रोवे झुरझूर बहे अश्रून का पूर, बिठू पसीने में चूर बिठू पंढरपुर में हुवे हैं*
*रुक्मिणी चुरती पद्मपाव घबर गये बिठूराव, रुक्मिणी कहे प्रभूराव क्या बलाय मुजे कहो*
*देव करे... करे घबरे घबरे बात, नामदेव की कहत हकीकत बुरी है*
*रुक्मिणी कहे जल्दी जाव नामदेव कू मनाव, उस पापी कू जलाव जाव सितावी*
*नामा लड़का अजान बहुत हुआ हयरान, अबी छोड़ेगा जान मुसलमान बेकदर*
*अकस्मात हुई बात उठ कर बैठे दीनानाथ, चल दीया उसी वक़्त मैं दीनानाथ आया हूँ*
*बिठू कहे नामदेव उस गाय कू हात लगाव, जान उसकी खुजाव जल्दी जाव गाय उठेगी*
*उठ कर खड़ी रहे गाय हर हर बोले बम्मन राय, नामदेव कू लगाय बिठूराय गले से*[148]

गोंदा की दक्खिनी रचनाओं की विशेषता है कि इसमें दक्खिनी की सभी विशेषताएँ हैं। इसमें मराठी शब्दों का अभाव है। इसकी शैली खड़ीबोली के प्रारम्भिक रूप में है –

*नामा रोवे आलफ उसे समजावे मा बाप, उसके हवेली में साँप हाका हाका पड़ी है*
*हत्ती घोडे कू काट लिया आदमी की पीठ, जिधर उधर न हाट नाट खट ऊपर काठा रे*
*बेदरशहा हुआ दंग कासी पंडत करे जंग, अब कैसा हुआ रंग बुरे ढंग क्या हुए*
*बादशहा कहे जल्दी आव कासी पंडत कू बुलाव, मेरे जान कू बचाव सच्चा देव उनों का*
*कासी पंडत प्यारेलाल मेरे जान कू सँबाल, पीर फकीर हक्लाल बालोबाल गुन्हेगार हूँ*
*कासी पंडत धरो पाव बहोत तर्हे से मनाव, नामदेव भगतराव ये बला दूर करो*
*पंडत तुम बड़ा सुजान तुम जानो उसका ज्ञान, हमने किया है तुफान अब जान बचाव*
*कासी पंडत बहुत भला कदम कदम जा मिला, नामदेव आ मिला लगाया गले सो*
*बादशहा के आड़े जिदर ऊदर खड़े, उने हात पाव जोड़े पकड़े पाँव तुमारे*
*मानो बिनती महाराज चलो पतीतन के काज, नामा कहे पंडतराज मत बाजो इस बात सो*
*नामदेव बड़े दयाल हाँसो किया जवाब सवाल, पंडत जा रहो खुशाल फिर वहाँ सो चल दिया*
*मेहेरबान नामदेव बिठूराय जान देव, उसका राज उसकू देव बुला लेव साप कू*
*इतनी बात बोल कर चला उनका लश्कर, पंडत आये फिर कर साप नजर न आवे*

148. वही, पृष्ठ – 48

*उसकू कर कर सनाथ नामदेव दीनानाथ, ओ गाई लियी सात उस वक्त चल दिये*[149]

इस घटना का संबंध गोंदा के पिता नामदेव से था, फिर भी गोंदा पूरी कविता में तटस्थ दर्शक की भूमिका निभाते हैं। उन्होंने पिता के प्रति पक्षपात या विरोधियों के प्रति आक्रोश व्यक्त नहीं किया। अपनी इस दक्खिनी रचना का अंत गोंदा ने इस प्रकार किया है –

*बादशहा करे जिकीर सच्च हिन्दू फकीर, ब्रह्मज्ञान में तीर रणधीर आये हैं*
*'गोंदा' लड़का अजान करे रात दिन ध्यान, हुए वो मेहरबान दिया ज्ञान बालक कू*[150]

ऊपर हमने गोंदा की दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु से परिचय पाया। जिसमें मुख्य रूप से गोंदा ने अपने पिता नामदेव के जीवन की कुछ झलकियाँ दिखाई हैं, जिससे हमें गोंदा की रचनाशीलता को जानने का भी अवसर मिला। हमें गोंदा की दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु का ज्ञान होने के साथ इस भाषा में इनकी दक्षता भी दिखाई पड़ी। गोंदा के समसामयिक दक्खिनी रचनाओं की तुलना में इनकी अपनी दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु की परिपक्वता में कथ्यात्मकता और संवाद शैली की विशेषता के महत्त्व को समझा जा सकता है, जो अपनी रचनात्मकता को बड़ी सहजता से अभिव्यक्त करती है।

## एकनाथ की दक्खिनी रचनाएँ और उसकी अंतर्वस्तु

एकनाथ दक्खिनी रचनाओं के काल विभाजन के अंतर्गत मध्यकाल ( 15वीं से 17वीं शताब्दी ) में आते हैं। इनका जीवन सन् 1528-1599 ई. तक माना जाता है। जो इनकी रचनाओं का समय भी है।

एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु मराठी के अन्य दक्खिनी रचनाकारों से भिन्न दिखाई देती है क्योंकि इनकी दक्खिनी रचनाओं पर दक्खिनी के समकालीन सूफ़ी रचनाकारों का प्रभाव

149. वही, पृष्ठ – 49-50
150. वही, पृष्ठ – 50

है। एकनाथ की दक्खिनी शब्दावली खड़ीबोली के साथ अरबी-फ़ारसी के अधिक नज़दीक है। इनकी प्राप्त दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु भी इसी ओर संकेत करती है। एकनाथ की इस दक्खिनी रचना से ये बातें और स्पष्ट हो जाती हैं। इनका विश्वास था कि ईश्वर और अल्लाह में कोई अंतर नहीं है। हिन्दू-मुसलमान संतों की संगत में इन्होंने यह परम ज्ञान प्राप्त किया था। एकनाथ जहाँ कहीं ईश्वर-अल्लाह की एकता प्रतिपादित करते हैं, उनकी भाषा वहाँ बदले हुए स्वभाव में सामने आती है। एकनाथ इस चर्चा में अपने भाव छिपाना नहीं चाहते, महाराष्ट्र की जनता पंढरपुर के विट्ठल से अपार श्रद्धा रखती है। अतः इन्होंने विट्ठल और अल्लाह में एकता स्थापित करते हुए कहा है –

*हज़रत मौला मौला, सब दुनया पालन वाला।*
*सब घटमो सांई बिराजे, करत हय बोल बाला।*
*गरीब नवाजे मैं गरीब तोरा, तेरे चरन कु रतवाला।*
*अपना साती समज के लेना, सलील वोही अल्ला।*
*जीन रूप से है जगत पसारा, वोही सल्लाह अल्ला।*
*एका जनार्दनी निजबद अल्ला, असल वोही चिर पर अल्ला।*[151]

[ हज़रत मौला ही सब दुनिया को पालने वाला है। सब घट में वह साँईं उपस्थित है। यहाँ उसी का बोलबाला है। हे गरीब नवाज़ मैं भी तुम्हारा ही गरीब हूँ। तेरे चरणों में रत हूँ। मुझे भी तुम अपना साथी ही समझो। तुम्हीं मेरे अल्लाह हो। जिसका रूप इस जगत में व्याप्त है वही सबका अल्लाह है। एकनाथ गुरु जनार्दन से सीख आए हैं कि उस अल्लाह को भजो, वास्तव में इस दीर्घ मार्ग पर चलाने वाला अल्लाह ही है। ]

धार्मिक परिस्थितियों के कारण हिन्दी क्षेत्र में रहने से एकनाथ को हिन्दी लोक गीतों का भी अच्छा ज्ञान हो गया था। साधु, भिक्षुक और बाजीगर आदि अपनी वृत्ति के सिलसिले में जो गीत गाते हैं

151. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 288

और जिन कहावतों और मुहावरों का प्रयोग करते थे, उनका परिचय इनको भलीभाँति था और उन्हीं के अनुकरण पर इन्होंने अनेक गीतों की रचना की है –

*हम तो जोगी रे बाबा संजोगी ।*
*बहुत दीन के पुराने,*
*बिरला बूझे कोई लाखों में, गुरु साहेब जाने ॥*
*जपका जोगी, तप का जोगीना, जोगी जुग जुग जीवे,*
*हात मो प्याला लिया प्रेम का भर भर पीवे ॥*
*जोगी कु धुंडत जोगया कीणे लखे नहीं पाया,*
*एका जनार्दन कृपा सो जोगी, पाकर ही लाया ॥*[152]

[ हम तो जोगी-संजोगी बाबा हैं, बहुत दिन के पुराने हैं । लाखों में कोई विरला ही उस भगवान को बूझ पाता है लेकिन मेरे गुरु साहिब उसे जानते हैं । उसके जप के लिए जोगी हैं, तप के लिए जोगिन हैं, ये वही लोग हैं जो युगों-युगों से जीते आ रहे हैं । वे हाथ में प्रेम का प्याला लेकर भर-भर घूँट पीते हैं । जोगी को ढूँढ़ते हुए जोग किया लेकिन वह हमें दिखाई नहीं देता । लेकिन एकनाथ पर गुरु जनार्दन की कृपा हुई और वह जोगी को पकड़ ही लाए । ]

एकनाथ के गीतों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इनमें आध्यात्मिक तत्त्वों का विवेचन किया गया है और जिनमें आध्यात्मिक रूपक बाँधने का यत्न है । इनमें लोक गीतों के सभी आवश्यक तत्त्व विद्यमान हैं –

*मैं दधि वेचन चलि मथुरा । तुम केंव थारे नंद जी के छोरा ॥*
*भक्ति का अचला पकड़ा हरी । मत खेचो मोरी फारी चुनरी ॥*
*अहंकार का मोरा गरगा फोरा । व्हाको गोरस सबही गीरा ॥*
*द्वैतन की मोरी आंगिया फारी । क्या कहूँ मैं नंगी नार उघारी ॥*

152. वही, पृष्ठ – 292

*एका जनार्दन ज्यासो भेटा । लागत पगो से कबु नहीं छुटा ॥*[153]

[ गोपी कहती है कि मैं मथुरा दही बेचने गई । वहाँ नन्द के पुत्र खड़े मिल गए । हरि ने भक्ति का आँचल पकड़ा दिया है, अब कोई मेरी चुनरी खींच कर मत फाड़ो । मेरे अहंकार की गागर फूट गई है, उससे वह दूध की तरह बह गया है । मेरे देह की अंगिया हरि जी ने फाड़ दी है, मैं निर्वस्त्र नारी क्या करूँ ? एकनाथ गुरु जनार्दन से भेंट कर आए हैं, उनके पाँव के ध्यान से मन कभी नहीं छूटता । ]

एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं के संबंध में उनकी यह रचना विचारणीय है । यहाँ एकनाथ ने 'यथा लाभ संतोष' का भाव व्यक्त करते हुए कहा है कि जीवन में परिस्थितियों के आवेग में आकर हताश नहीं होना चाहिए बल्कि अपने को उसके अनुकूल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए । एकनाथ को हिन्दी लोकगीतों का पर्याप्त ज्ञान था । भिक्षुक, बाजीगर, फकीर आदि अपने जीवन से सम्बद्ध जो गीत गाते थे, जिन वाक्यों और कहावतों का प्रयोग करते थे, एकनाथ का भी उन सब से परिचय हो गया था । फकीरों द्वारा गाए जानेवाले गीतों का अनुकरण करके एकनाथ ने दक्खिनी में अनेक गीत लिखे उन्हीं में से इस संदर्भ में एक पद यहाँ प्रस्तुत है –

*अल्ला रखेगा वैसा भी रहना, मौला रखेगा, वैसा भी रहना ॥*
*कोई दिन सिर पर छतर उड़ावै, कोई दिन सिर पर घड़ा चढ़ावै ॥*
*कोई दिन तुरंग ऊपर चढ़ावे, कोई दिन पाव से खासा चलावे ॥*
*कोई दिन शक्कर दूध मलीदा, कोई दिन अल्ला मारत गदा ॥*
*कोई दिन सेवक हात जोड़ खड़े, कोई दिन नजीक न आवे धेड़े ॥*
*कोई दिन राजा बड़ा अधिकारी, एक दिन होइए कंकाल भिकारी ॥*
*एका जनार्दन कहत करतारी, गाफल केंव करता मगरूरी ॥*[154]

153. वही, पृष्ठ – 279
154. वही, पृष्ठ – 296-297

[ अल्लाह जैसा रखे उसी तरह रहना चाहिए, वही मौला की इच्छा है। किसी दिन सिर पर छत्र चढ़ा देता है, किसी दिन उस पर घड़ा रखा देता है। किसी दिन वह हमें घोड़े पर बैठा देता है, किसी दिन वह पैर से खासा चलवाता है। किसी दिन शक्कर, दूध और मलाई मिल जाती है, किसी दिन अल्ला भूखा रखता है। किसी दिन सेवक लोग हाथ जोड़कर खड़े होते हैं, किसी दिन वे अपने पास आने नहीं देते। किसी दिन राजा बड़ा अधिकारी हो जाता है तो कभी एक दिन वह कंगाल भिखारी भी हो सकता है। एकनाथ के गुरु जनार्दन कहते हैं कि किसी प्रकार के भ्रम में मत पड़ो। ]

नाथ सम्प्रदाय की साधना पद्धति और परिभाषाओं एवं मुस्लिम संतों द्वारा प्रचारित सूफ़ी साधना तथा विचारधारा से एकनाथ भलीभाँति परिचित थे। अतः उन्होंने इन दोनों विचारधाराओं के समन्वय का प्रयास किया है, एकनाथ की यह दक्खिनी रचना इसी संदर्भ में है, इसमें रचना की अंतर्वस्तु के साथ हमें एकनाथ की शब्दावली को भी इससे समझने में आसानी होगी –

*आदि पुरुष निर्गुण निराधार की याद कर, मेरे गुरु परवरदिगार की याद कर।*
*जीने माया अजब बनाई, उस वस्ताद की याद कर।*
*गैबी खजान हमने दिया, उस साहब की याद कर।*
*संत महन्त की याद कर, गुणी गुणवंत की याद कर।*
*श्री भगवंत की याद कर।*
*जोग-जुगत का बाँधा तोड़ा, शम-दम का सीर पर समला छोड़ा।*
*समता सो ही सुहावे तुरा, गुरु गारुडी बीर पुरा।*
*नैन चीर के पैर्ही मुद्रा, कान फार के खाये निद्रा।*
*अनुहद ध्वनी धुमक बाजे, नाग-सुर धुनुक गर्जे।*
*चल चल चल, निरंजन जंगल के जिवडे।*
*खेलना होय तो उलट दृष्टि से खेल, आबी करूँगा तेरा तमाशा।*
*पैल तेरी मुंडी काटूँगा, साप सब भुले बिचु, किडे।*
*प्रपंच कोठरी में आके दडे, बडे बडे जनावर पाले।*

*हरे, लाल, सफेत, उजले, काले, पिले, भले, बेभले।*
*हाँडीबाग अभिमान जिवडे झुटमुठ चिपीच लढे।*
*नहिं कहूँ तो ब्रह्माण्ड काटने दौरे, देखो मिया हाय हाय हाय।*
*डंख मारा बे डंख मारा, सो बडे बडे कू नहीं उतारा।*
*जब गुरु ग्यान का लगाया मोहरा, जहर उतारा।*
*देखो मिया बाजेगिरी विद्या खेल, हाँडीबाग बडा अलबेला।*
*हात हालावे के पाँव हालावे, भोले भोले लोक भुलावे।*
*आबे हाँडीबाग, बाप बडा क्या बेटा बडा ?*
*चेले आगे गुरु खड़ा, चेला तो प्रेम महेल पर चढ़ा।*
*धनी बड़ा क्या चाकर बड़ा ? चाकर आगे धनी खड़ा।*
*सास बड़ी क्या बहू बड़ी ? बहू आगे सास खड़ी।*
*बीबी बड़ी क्या बाँदी बड़ी ? बाँदी आगे बीबी खड़ी।*
*निराधार की ले कर छड़ी, बीबी खसम की छाती पर चढ़ी।*
*तैं बड़ा क्या मैं बड़ा ? मेरे आगे तैं खड़ा।*
*मैं नहीं मैं नहीं, आलम छाया मेरे गुरु।*
*ग्यानी कू ग्यान लगाऊँ, लोभे आँधे कू उड़ाऊँ।*
*फुक मारू तो जा जा जा, बच्या जाहाँ आना नहीं, ताहाँ ज्या।*
*मेरे सद् गुरु दाता कू शरन ज्या, मेरे सद् गुरु दाता की इतनी-सी लकरी।*
*मूल मंतर हात मो पकरी, जीदर दौरा उदर दौरी।*
*फेर देखे तो मेरी मेरे सात, देख अबी करूँगा खबूतर का तमाशा।*
*बिन पर से उड़ता है कैसा ! खेल खेलते अविद्ये के खलीते में घुसा।*
*बाहेर कैसा आवेगा ? आव बे, आव बाहर आव।*
*जिसे नहीं हात ना पाव, जिसे नहीं गाँव ना ठाँव।*
*जिसे नहीं रूप रेखा नाँव, भाव ना अभाव कुछ नहीं।*
*धीरे धीरे तेरा बी मंतर बोलूँ, लिंगदेह की गाँठ खोलूँ।*
*एक बार ऐसा खेल खेलूँ, कि मेरे बड़े बड़े खेल थे।*
*हा तो एक, एक के दो, दो के तीन, तीन के चार।*
*चार के पाँच, पाँच के पच्चीस, पच्चीस के छब्बीस, छब्बीस का एक।*
*एक बी नहीं, तो जनार्दन देख !*[155]

155. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 59 से 63 तक

एकनाथ ने क्रोध, विषय-वासना एवं ममता को परम शत्रु माना है। इन शत्रुओं को केवल गुरु पराजित कर सकता है, इन्होंने गुरु को 'गारुडी' कहा है। इस संबंध में श्रीराम शर्मा का मत यह है कि "नाथों ने साधना-पद्धति में गुरु को अत्यधिक महत्त्व दिया था। गुरु का यह स्वरूप एकनाथ ने नाथ सम्प्रदाय से प्राप्त किया, गुरु ही गारुडी हैं। गारुडी के आगे सर्प कुछ नहीं कर सकता। गारुडी का शब्दार्थ मदारी या सँपेरा है, किन्तु यह गरुड का परिचायक भी है। गरुड के आगे क्या कभी किसी सर्प ने साहस किया है।"[156] एकनाथ के गुरु जनार्दन स्वामी सच्चे गारुडी हैं। सच्चा गुरु सदैव अपने शिष्य की बुराइयों का शमन करता है। क्रोध भयानक बिच्छू है, काटते ही उसका विष चढ़ जाता है। बड़े-बड़े लोग क्रोध में परास्त हो जाते हैं इसलिए विषय रूपी सर्प से बचना है तो गुरु के निकट ध्यान लगाना होगा। गुरु के निकट किसी सर्प की गति नहीं है। ममता रूपी नागिन का विष भयंकर है, इससे बचने का उपाय बताते हुए एकनाथ कहते हैं कि गुरु अथवा पीर का मोहरा मिले तो ममता का विष उतर जाए। जिसके पास गुरु का मोहरा होता है, उसके पास नागिन कभी नहीं लौटती। शांति इस नागिन के लिए पिटारे की तरह है, शांति में ममता को बंद कर ऊपर से विवेक की चमड़ी लगा देनी चाहिए ताकि कोई हमारी शांति को कोई भंग न कर सके। एकनाथ का मानना है कि विवेक से ही शांति स्थिर रह सकती है। उन्होंने अपनी इस दक्खिनी रचना में इसी के संदर्भ में यह बतलाया है कि गुरु के चरणों में जीवन व्यतीत करने वाला अंत में 'अलख' से भेंट कर लेता है –

*अव्वल याद करो वस्ताद की, गुरु, पीर, पैगंबर की।*
*और याद किंये करतार की, जिन्नै ब्रह्माण्ड पैदा किया है।*
*अव्वल देखो ये कथा – उसे नाम न था।*
*नाम दरम्याने पैदा हुआ चल, चल, चल, अव्वल तो एक, एक सो दोन।*
*दो सो तीन, तीन सो चार, चार सो पाँच।*
*पाँच सो पच्चीस, पच्चीस सो छब्बीस बनाया है, छब्बीस का भी एक रड्या है,*

156. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, वही, पृष्ठ – 77

*सो गुर गारुडी कूँ याद है, और देखो कैसा खेल बनाया है।*
*चल, चल, चल, क्रोध का बिच्छू बाहर काटा, उसका बीख शिर कू चढ़ा।*
*जपी, तापी सन्यासी की खोड़ तोड़ा, समज के देखो भाई,*
*बिच्चू ने नांगी मारा रे मारा, छ न न न न कहने लगा, चल, चल, चल।*
*ये देखो बाहेर निकला, काम-विषय का साप,*
*तमाशा देखो मेरे बाप, बिन दांतों से काटे, आये आप।*
*अरे रे रे, काटा रे काटा, नज़र ध्यान करो रे।*
*नज़र ध्यान करो, सो सापे दूर करे, चल, चल, चल।*
*ये देखो ममता नागन आई रे भाई, आई।*
*तिनें तो डंख मारा रे मारा, ठन न न न।*
*भगो रे भाई भगो, दवड़ो रे दवड़ो, गुरु के चरन पर दवड़ो।*
*तो ऐसा करू की गुरु के – पाँव कबी ना छोड़ो।*
*वहाँ कोई का ना चले, ममता नागन का ज़हर बुरा है।*
*वो कैसी चलती है ? सो बड़े बड़े से लड़ते हैं।*
*वो ना लढ़े ऐसी हिकमत – बताऊँ तुम कूँ।*
*सुनो रे भाई सुनो, गुरु-पीर के हात का मोहरा –*
*तुम्हारे हात चढ़े दुनेदारा, तो नागन का तुटे थारा।*
*सो कबी आवने न पावे, मना मनशा साप करो।*
*शांती पेटारे में वुसकू डारो रे भाई डारो।*
*बाहेर तो विवेक शिक्का मारे, जीव और तन।*
*ईस दोनो कूँ – ऐसा कस के गुरु के चरन पर।*
*रात और दिन खेलो, जनार्दन गुरु गारुडी के पास।*
*वहाँ तुम करो खेल, खेलते खेलते हो ज्यायगा आलक्ष।*
*'एका' हाँडीबाग कूँ दिया खेल, सो हो गया अलक्ष खेल।*[157]

157. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 57 से 59 तक

एकनाथ अपनी दक्खिनी रचनाओं में भक्ति मार्ग और विट्ठल की स्तुति को सार्थक जीवन का अंग मानते हैं। इनकी दक्खिनी रचनाओं में भक्ति तत्त्व को जीवन के व्यावहारिक भाव के साथ व्यक्त किया गया है। एकनाथ की इस रचना में भी जिसमें एकनाथ कहते हैं कि हरि के नाम के अलावा और क्या पुकारा जाए यह बात फटकार के साथ कही गई है –

*दिल मो याद करो रे, जनम का सारथक करो रे।*
*सारे दीन करत पेट खातर धंदा, बिटल नाम लेवत नहीं केंव रे तूँ गधा।*
*जम का सोटा बाजे पिठ पर कोई आवे नहीं सात,*
*'एका' जनार्दन नाम पुकारे करो हरिनाम बात।*[158]

[ एकनाथ कहते हैं कि उस हरि का हृदय से स्मरण करो। जनम सार्थक हो जाएगा। सभी लोग पेट के कारण ही धंधा करते हैं, मूर्ख तुम विट्ठल का नाम क्यों नहीं लेते हो ? जब यम का आघात तुम पर होगा तो तुम्हारा साथ कोई नहीं देगा। एकनाथ गुरु जनार्दन से सीख लिए हैं कि केवल हरिनाम की पुकार लगाओ वही तुम्हारा साथ दे सकता है। ]

एकनाथ अपनी इस दक्खिनी रचना में लोक की सत्यता और जीवन की सार हीनता के विषय में बतलाते हुए कहते हैं –

*दिल की गाठ खोलो, यारो नाम बोलो।*
*कोई नई आवे सात, मुंडे काय कू करे बात।*
*जोरू लरके माँ-बाप सब पसारे हात।*
*हत्ती, घोड़े, पालख, मैना नहीं आवे सात।*
*दो दिन का बजार यारो, कायकू करता बात।*
*झूटी काया झूटी माया, झूटा सब दिन रात।*
*जनार्दन बोले भाई, कोई नहीं आवे सात।*[159]

158. वही, पृष्ठ – 64
159. वही, पृष्ठ – 64

[ अपने दिल की गाँठ खोल लो और उस भगवान का नाम बोलो। कोई साथ नहीं आता है, मूर्ख किसी और की बात क्यों करता है ? पत्नी, बच्चे, माँ, बाप आदि सब तुम्हारे आगे हाथ फैला देते हैं, हाथी, घोड़े, पालकी में से कोई साथ नहीं आता है। यह संसार दो दिन का बाज़ार है, किसी और की बातें क्यों करते हो ? यह तन भी झूठा है, इसकी माया भी झूठी है, यहाँ सब दिन-रात झूठ के समान हैं। गुरु जनार्दन बतलाते हैं कि कठिन घड़ी में कोई साथ नहीं आता है। ]

एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं में जीवन के लोक व्यापार का कई बार उल्लेख मिलता है, यह ध्यान रहे कि उसमें उनके भक्त जीवन के अनुभव भी निहित होते हैं –

*तप साधन सुखें करना, दो मिल के गीत गाना।*
*बहुत मिल के विद्या शिकना, भावबन्द में बरकस रहेना।*
*दुश्मन देख के तवाई धरना, खुदा मिल के बाद खाना।*
*पाँच मिल कर इन्साफ करना, इन्साफ की तो बात बोलना।*[160]

[ एकनाथ कहते हैं कि तप साधना सुख के लिए करना, दोनों के साथ मिल कर गीत गाना। बहुतों के साथ संगत में विद्या सीखना, इससे भावबंद में बढ़त रहेगी। दुश्मन देख कर अपना पक्ष रखना, ख़ुदा के स्मरण के बाद खाना, पाँच जन के साथ बैठ फैसला करना और सदैव सच्चाई की बात बोलना ही हमारे लिए न्याय मार्ग की बातें हैं। ]

एकनाथ अपनी इस दक्खिनी रचना में संसार की व्यावहारिकता से अलग उसमें निहित लोक की मर्यादा के साथ उस ईश तत्त्व और स्वयं की रूप दशा के नकार का दर्शन बतलाते हैं, जिसमें मनुष्य के अस्तित्त्व का ठीक-ठीक कोई ठिकाना नहीं है –

*नाहं जोगी नाहं भोगी नाहं जोशी सन्यासी, नाहं कर्मी नाहं धर्मी उदासीना घरबासी।*

160. वही, पृष्ठ – 65

*बाबा अचिन्त्य रे बाबा अचिन्त्य रे ब्रह्मीं स्फुर सो माया, नाम नहीं ना रूप देखा सो मैं आम्हारी काया।*
*नाहं सिद्धा नाहं भेदा नाहं पंडित ज्ञानी, नाहं जपी, नाहं तपी, नाहं ध्येय ध्यानीं।*
*नाहं पिंडा ना ब्रह्मांडा नाहं जीव शिव कोई, नाहं पुरुषा नाहं नारी नाहं देव बिदेहीं।*[161]

[ मैं जोगी नहीं हूँ, मैं भोगी नहीं हूँ, जोशी और सन्यासी भी नहीं हूँ, कर्मी-धर्मी या उदासीन रह कर निवास करने वाला भी नहीं हूँ। बाबा यह तो सोचने योग्य बात करने की बात है ही नहीं जैसा ब्रह्म है माया भी वैसी ही दिखाई देती है। उसका नाम नहीं है, रूप नहीं है लेकिन उसके लिए हम अपनी काया से ध्यान लगा सकते हैं। मैं सिद्ध नहीं हूँ, भेदी, पंडित और ज्ञानी भी नहीं हूँ। मैं जप करने वाला नहीं हूँ, तपी भी नहीं हूँ और ध्येय ध्यान लगाने वाला भी नहीं हूँ। मैं पिण्ड नहीं हूँ, ब्रह्माण्ड भी नहीं हूँ और कोई जीव-शिव भी नहीं हूँ। मैं पुरुष नहीं हूँ, नारी भी नहीं हूँ और देवों में विदेह भी नहीं हूँ। ]

एकनाथ ने दक्खिनी में 'भारुड़' की रचना की, भारुड़ एक प्रकार के लोकगीत हैं जो निम्न वर्गीय समाज के लोगों में प्रचलित थे। एकनाथ के भारुड़ की अंतर्वस्तु में व्यक्त भाव मूलतः लोक जीवन के साथ संसार में सर्वव्यापी उस अज्ञेय तत्त्व की व्याख्या भी है –

*हुशियार बंदे हुशियार, तेरा तन ख़बरदार।*
*तुझे खिलावन एक नार, बना देव सतरावी घर पाई है।*
*बड़े-बड़े साधुसंत, उनसे कर ले एकांत।*
*वतादेव सिद्धान्त, आदि अंत उनोंका।*
*बड़ी तो सबसे बड़ी, जाड़ी तो धरतरी से जाड़ी।*
*एकबीस खन्न की माड़ी, गगन बीच में खड़ी हैं।*
*दसवे द्वार बुरों का, देव ले दिदार उनोंका, नैन दीन लगावे।*
*ब्रह्मा विष्णु बड़े देव, अजब गुरू ग्यानी महादेव।*
*पहिए उनोंकी ठेव, बठैके जब झुलाई है।*
*अलख पुरूष को धुनि, तुर्या चेत रही उन्मनी।*
*नहीं आदि अंत पुराणीं, पत्री महाकारण रूप है।*

161. वही, पृष्ठ – 66

*अहंनाद निःशब्दमों, सोस लगाइए चष्ममों।*
*चुनकहै मसूर मों, झकझक झकाकत है।*
*लखलखाट हिरेकी खान, चकचकाट कोटि भान।*
*निश्दिन करता ना ध्यान, ग्यान बहोत आएगे।*
*दिल रिझे तो कर ले धंदा, भटगोपाल उनोंका बंदा।*
*चूप सोनेसो बताई है।*[162]

एकनाथ की बाजेगरी यानी बाजीगरी शीर्षक से एक दक्खिनी रचना मिलती है, जिसकी अंतर्वस्तु में इन्होंने लोक की मान्यताओं के साथ मिथकों का ज़िक्र किया है। एकनाथ की यह रचना इस प्रकार है –

*संसार बाजेगरी लेखं दुरलग अंदेशा कर देख।*
*जो कुच होना सो कदा न चुके, वल्ले वस्तादकी पदनामी।*
*आखर जमानी, या दिन के बुरे हाल होवेंगे।*
*दुनिया में बड़ा-बड़ा तमासा, बड़े-बड़े हुन्नेर लगे।*
*विद्या अविद्या बोलना एक, वल्ले वर्णू के अनेक।*
*इस काम में बड़े बाजी, जिसकूँ अंत न पाया।*
*गाफल कहते मेरी माया, गुरूका बोध ऐसा पाया।*
*ऐसी हमारी छाती गई, वो क्रोध बाग कुरवाए।*
*अहंकार सापल देना चढ़े, मुवा जैसा चिपकाचि पढ़े।*
*परका खबुतरकाभी पर, वो बाता सबहि दुरकर।*
*पंखबन एक हंस कीया, ब्रह्मासनथी मुह मुंडाया।*
*आपेभी वाहवा छपी खाया, हुशार देख तो नजाकचि पाया।*
*एकमो अनेक अनेकमो एक, येही देखनावे हुशारीमें देख।*
*वाहा नहीं देखना दुःख, येह खेल खेलते समाधी सुख।*
*एका जनाद्रनी जग समस्त, इसबाजी में भिस्तरदस्त।*
*देखे फिर तो अजब बात पैगंबर कहै, सदर हामत येही तमासा सिद्ध देखे।*
*जो देखे सो जुदा नहीं देखे, एका जनार्दनी बैसका बाजीगर एन हलक।*[163]

162. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 178
163. वही, पृष्ठ – 178-179

यहाँ एकनाथ ने संसार दशा का वर्णन करने के साथ उसमें व्याप्त जीवन स्थितियों की ओर संकेत किया है जो सांसारिक बोधगम्यता से परिचय कराते हैं।

एकनाथ अपनी एक दक्खिनी रचना में ब्राह्मण और तुर्क के झगड़े का वर्णन करते हुए उन्हें फटकार लगाते हैं –

*का रे तुर्का परम मुर्खा, क्यों रे बह्मण क्या कहता।*
*तुम्ही यवन परम नष्ट, बह्मण तुम बड़ा झूटा।*
*झूटपणा कोणता सांग, मैंतकी बनाया राख।*
*मुडद्यावर तुम्हीं ठेवता चिरे, वोही पीरपैगंबर हमारे।*
*अवघें बोलणें मिथ्या बोलतो, तुम्हारा कहना हमें झुटा सुनतो।*
*तुम्हीं तुरूक भ्रष्ट झाला, बह्मण तू अंधा भया दिवाना।*
*तुमचा आमचा विवाद थोर, जुगजुग रहा चली चलणार।*
*एका जनार्दनी वाद, तेथें सहज एकपणें संवाद।*[164]

[ तुर्क तुम परम मूर्ख हो, ब्राह्मण तुम क्या कहते हो ? तुम यवन बड़े नष्ट-भ्रष्ट हो, ब्राह्मण तुम तो बहुत झूठे हो। झूठ का किसे साथ मिला है, किसको मित्र कहा जाए। मूर्ख व्यवहार की संगत क्या ठहरे, हमारे लिए तो वह पीरपैगंबर ही सब कुछ है। कुछ लोग सदैव मिथ्या व्यवहार ही करते हैं। तुम्हारे कहे को भी वे झूठा ही सुनते हैं। तुम तुर्क बहुत भ्रष्ट हो, ब्राह्मण तुम तो झूठ में अंधे और दीवाने हो गए हो। तुम्हारे और हमारे बीच का विवाद यही है, यह बात युगों से चली आ रही है। एकनाथ के गुरु जनार्दन कहते हैं कि ऐसे लोगों से सहज संवाद किया ही नहीं जा सकता। ]

एकनाथ ने अपनी एक दक्खिनी रचना में एक मलंग फकीर का वर्णन इस प्रकार किया है –

*भला संतन का संग, खावे निज बोधन की भंग।*

164. वही, पृष्ठ – 179

*सदा आनंद मो दंग, ऐसा मलंग फकीर।*
*ग्यान के मैदान खड़े, शम-दम से आन लढ़े।*
*बहोताँ के तखत चढ़े, ऐसा मलंग फकीर।*
*कियाँ संतन का दुमाल, मेरा तुटा बहु जंजाल।*
*ऐसा एकनाथ कंगाल, ऐसा मलंग फकीर।*[165]

[ संतों की संगत भली है, उससे बोधगम्यता आ जाती है। हम सदा आनंदित रहते हैं, मलंग-फकीर लोगों की यही वृत्ति है। ज्ञान के मैदान में खड़े हैं, इसलिए शम-दम से सामना होता रहता है। हम बहुतों के तख़्त चढ़ चुके हैं, मलंग-फकीर लोगों की यही वृत्ति है। संत संगति का आधार लेकर मेरे मन का जंजाल टूट गया है। एकनाथ भी ऐसा ही कंगाल है जैसी मलंग-फकीर लोगों की वृत्ति है। ]

एकनाथ की एक दक्खिनी रचना में जोगी भेष का वर्णन मिलता है, एकनाथ उसमें जोगी के स्वभाव और उसके प्रति आकर्षण को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि गुरु के रूप में उन्हें अजर-अमर पद का बोध हुआ है –

*उलट नैनमो दर्शक गाढ़ा, रूप रेखेविण पुरुख खड़ा।*
*चंद्र सुरोज बिना तेज उघाड़ा, कर्म शून्य का मूल उखाड़ा।*
*आलख ज्यागे, गुरुजी आलख ज्यागे।*
*समाधी लगी सहजी सहज्या, उन्मनि संगे मन ही रिझ्या।*
*अनुहात शृंगी वाजत बाज्या, जहाँ तहाँ आप कोई नहीं दुज्या।*
*चतुर्दश षट्दल दशदल उलठा, द्वादशदल षोडश दश फाठा।*
*द्विदल पर मयाच पेठा, सहस्र दल मन भवरा पैठा।*
*अजरामरपद गुरुका देखा, पाय एका जनार्दनका एका।*
*आँत कालका भागे भोका, संत बचनसो भाव धरो फुका।*[166]

165. वही, पृष्ठ – 184
166. वही, पृष्ठ – 184

एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं में श्रीकृष्ण, राधा, गोपियों, नन्द की गाय, मथुरा इत्यादि के वर्णन से जुड़ी रचनाएँ भी मिलती हैं, एकनाथ की एक दक्खिनी रचना में श्रीकृष्ण और गोपियों की लीला का वर्णन इस प्रकार है –

*दे दे दे मारी कन्हैया लाल साड़ी छे, तुम भालो नन्द जी नन्दन लाल छे।*
*मैं तो आई मथुरा हात छे, बिगरी तूँ क्या धरे घाट छे।*
*ज्याकर बोलुँगी जशोदा नन्द छे, तारी खोड़ तोडुंगी हात छे।*
*एका जनार्दन बिनती करत छे, दोनों हाथ जोड़ छे।*[167]

[ गोपियाँ कहती हैं कि कन्हैया हमारी साड़ी दे दो, तुम नन्द जी के भले लाल हो। मैं तो मथुरा से आई हूँ, मैंने क्या बिगाड़ा है जो मुझे घाट पर इस तरह परेशान करते हो। मैं यशोदा और नन्द से तुम्हारी शिकायत करूँगी, तुमने मुझे बहुत सताया है। एकनाथ गुरु जनार्दन से सदैव दोनों हाथ जोड़ कर विनती करते हैं। ]

एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं में विविधता है। उनकी इस दक्खिनी रचना में फकीर के जीवन दर्शन का रूप बतलाया गया है –

*पंच तत्त्व का शोध करीयो, मूल बंध अंकुश खोजीओ।*
*पाँच पाँच के पचीस पचीयो, ग्यान ध्यान सो धीर मच्याई।*
*फकीर हय भाई, गले मैं सेली हात में झोली।*
*अनहत लंगर नाम की पोली, गुरु ग्यान मन से झोली।*
*आशा छोड़ धीर न छाँड़ीयो।*[168]

[ एकनाथ कहते हैं कि पाँच तत्त्व का शोध कर लो, मूल बंधन के अंकुश खोज लो। पाँच पाँच से पच्चीस बन जाए, ज्ञान ध्यान से ही धैर्य धारण होता है। हम फकीर हैं भाई, हमारे गले में सेली और हाथ में झोली

167. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 280
168. वही, पृष्ठ – 289

है। अनहद की संगत उस भगवान के नाम के सहारे ही है, गुरु का ज्ञान हमारे मन की इस साध को जानता है। हमें आशा छोड़ कर धैर्य नहीं छोडना चाहिए। ]

इनकी एक दक्खिनी रचना 'बुल बुल' नाम से है जिसकी अंतर्वस्तु में एकनाथ जी ने अपने गुरु स्वामी जनार्दन को याद करते हुए ये भाव अभिव्यक्त किए हैं –

*लखो बुल बुल है, दावोजी मुबारखो।*
*झुटा तेरा जप, भात रोटी गप, सद गुरु में छप।*
*तुझे काल करेगा गप।*
*लगो मुख लिया नाम, आदर भरा है काम।*
*ऐसा केव हुवा बेकाम, तुझ काहां मिलेगा राम।*
*मोकूं आगकूं लगाया राख, दिल मो नापाक*
*ऐसा देखे लख, एका जनार्दनी देख।*[169]

एकनाथ 'नानक' नाम के साथ किस रूप में संसार का वर्णन करते हैं यह विचारणीय है, वह स्वयं ब्राह्मण होते हुए भी ब्राह्मणों को फटकारते हुए भाव अभिव्यक्त करते हैं कि ये ब्राह्मण भगवान का नाम बेचने का धंधा करते हैं, इनकी करनी ही हराम है। उनकी इस दक्खिनी रचना में, जो 'नानक' नाम से है, संसार का सार इस रूप में वर्णित है –

*अलख निरंजन नानक आया, नेकी करणा आछा है।*
*फेक पैसा फेक यारो, फेक के पैसा फेक।*
*माया झोली निरगुण सैली नाम माला जपता है।*
*समकी टोपी, दमकी कफनी, त्रिगुन बभूत चढ़ाई है।*
*जीव शीव दोनों कुंडल पेन्हे, अन्हत टिपरी बजावत है।*
*काम क्रोध की गर्दन मारी, बोध खंडा झलकत है।*
*प्रेम कटारी लियो हात में, लवंडी माया डरती है।*
*वैराग्य माला पड़े उजाला, संसार मो तो फत्तर है।*

169. वही, पृष्ठ – 291

*तो भवन मो सौदा बेंचे, आशा मनशा धरता है।*
*फेर चौया-यांशी आयी यारो, भूपर जूता खाता है।*
*चारो बरन मो ब्रम्हन बड़ा, घर घर कथा करता है।*
*नाम बेच कर दाम लेवे, उसकी करनी हराम है।*[170]

एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं में फकीर के माध्यम से बहुत सी गूढ़ बातें की गई हैं। यह इस दक्खिनी रचना में देखने योग्य है कि किस प्रकार इन्होंने दार्शनिक आख्यान से लेकर लोक मर्यादा तक की सामान्य बातों को भी अपनी रचना का हिस्सा बनाया है –

*फकीर होकर फिकीर करता, उसका मूं काला है।*
*नाथ पंथ की मुद्रा डाली, जग में सिंगी बजावत है।*
*सिंगी नाद कुं औरत भूला, वोबी लवंडा झूठा है।*
*सन्यास लिया आशा बढ़ाया, मीठा खाना मंगता है।*
*भुल गया अल्ला का नाम यारो, ज्यंम का सोटा बजता है।*
*शेटेसावकार माल खजीना, उनमें मगन रेहेता है।*
*जोरु लड़के कोई नहीं साती, आखेर भूमे मट्टी है।*
*मानभाव बने वो काला पैने, छानकर पानी पीता है।*
*आत्म ज्ञान कूं चोर लुटत हैं, वो बी सच्चा गद्धा है।*
*शंख बजाबत जंगम आया, घर घर लेकर फिरता है।*
*पेट खातर शिव कु बेचे, वोबी लवंडा कुत्ता है।*
*गोसावी बड़ा भगवा आवे, जटा बढ़ाकर रहेता है।*
*साहा चोर कु जागा देकर, उसके फंद में फिरता है।*
*साहा फेंके सो साहु बनेगा, नहीं तो सारो गव्हार है।*
*फेक आशा फेक मनशा, निंदा फेंके सो जोगी है।*[171]

इनकी दक्खिनी रचनाओं में भाव विस्तार और क्षण रूप से लोक की बातों को रचना में उठाया गया है। जिसमें एकनाथ ने लौकिक और दैविक बातों के साथ जीवन की समग्रता को व्यंजित किया है –

170. वही, पृष्ठ – 292
171. वही, पृष्ठ – 293

*परधन फेंक दुजी औरत फेंक, न फेंके सो चांडाल है।*
*दंभमान फेंक मोपन फेंक, न फेंके सो नकटा आंधा है।*
*साही शास्त्र अठरा पुराण, चारों बेद पढ़ता है।*
*माँ बाप तो कासी तीरथ, उसकूँ गाली देता है।*
*साधुसंत घरकु आये, उसकूँ तेड़ा बोलता है।*
*दीवाना उनका बाप यारो, हाथ जोड़कर रहेता है।*
*नाम अल्ला कथा सुन्ने की, वा मुरगी का सोता है।*
*काम का कुत्ता कसबीन धरम, सारी रात दीन जगता है।*
*इस दुनिया में आया बंदे, अल्ला नाम का सौदा है।*
*एका दिन आना एक दिन जाना, दो दिन का सब बाज़ार है।*
*इस नगरी में सेटे सावकार, बड़े मतलबी रहते हैं।*
*नाम की जोड़ी करले यारो, चोयान्यांशी बेड़ी तुटती है।*
*तेरे नगरी में नानक आया, पैसा टक्का कूच मंगता नहीं है।*
*भक्ती रोटी भाव का सालन, देना मेरे कू सच्चा है।*
*एक जनार्दनी शाही हमारा, नानक उनका बंदा है।*
*मोक्ष निशानी लिया हात मो, बैकुंठ धाम पढ़ता है।*[172]

एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं में अपने समकालीनों की अपेक्षा लोक जीवन और सांसारिक ज्ञान की बातें अधिक हैं। एकनाथ ने 'नानक' शब्द का प्रयोग विशेष अर्थों में किया है। 'गुरुग्रंथ साहिब' में सिख गुरुओं के वचन नानक नाम से ही संकलित हैं। एकनाथ का विश्वास है कि नामदेव, कबीर आदि ने 'नानक' के रूप में ही जन्म लिया था। इनकी इस दक्खिनी रचना से ये बातें और स्पष्ट हो जाती हैं कि एकनाथ अपने और अपने समकालीन जीवन एवं समाज के मिथकों पर किस प्रकार विचार करते थे –

*सिर में टोपी, गले में सैंली, कफनी डाला देख, फेक दाम फेक, मुजे फेक दाम फेक।*
*निराकार नाम एक, हमने लिया भेक, सोहं की वो नौबत बाजे, बिरला ज्याने एक।*
*शम दम के तो सोटे बाजे, कुफर भागा देख, बड़ानुग्रह देतां नहीं, नसकु फत्तर देख।*
*बड़ा सूम बोले नहीं, जुता खड़ा देख, घुस आया कपड़ा जलाया, आग लगी देख।*
*ग्यानोबा ग्यानो का घर, गले मो सैली सिंगी देख, पैठण में तो मुजे वेद, रेड़ा बुलावे देख।*

172. वही, पृष्ठ – 294

*पैठण होकर घर कूं चले, पशु कु समाद दीया देख ।*
*ग्यानोबा विष्णु का अवतार, दरवाजे सुन्न का दिंदल देख ।*
*निवृत्ति अवतार बाबा आदम का, पहाड़ मो समाद लिया देख ।*
*सोपान देव तो ब्रह्मा भया, भागीर्थी लाया देख ।*
*चांगदेव तो मिलने आया, दिवाल चलाया देख ।*
*और नानक नामा दरजी, देव भुलाया देख ।*
*और नानक कबीर हुआ, दूजा कमाल देख ।*
*बड़े नानक सावंता माली, पेट चिरा देख ।*
*और नानक सज्जन कसाई, भजने कू साल-ग्राम देख ।*
*गोरोबा कुंभार नानक हुवा, हात तोड़े देख ।*
*नानका घर, दादू पिंजारी, नाम जपता एक ।*
*एक नानक प्रल्हाद हुवा, बाप कु मरवाया देख ।*
*नानका घर विभिषण हुवा, कुल डुबाया देख ।*
*और नानक विसोबा खेचर, तन के शाम देख ।*
*बड़े शहाणे नरहरी सोनार, सीर पर लिंग देख ।*
*रोहिदास चंभार सब कुछ जाने, कठोर गंगा देख ।*
*सेना नानक पूजा करिता, देवने धोकटी लिया देख ।*
*चोखोबा ने देव बटलाया, शिवाल पकड़ी देख ।*
*ऐसे नानक बहुत हुवे, अंत न लागे देख ।*
*ऐसे नानक नाम जपके, बैकुंठ जावे देख ।*
*कासी, गया, प्रयाग गया, कर्वत लिया देख ।*
*मथुरा गया, द्वारका गया, छापा लिया देख ।*
*उसका नाम लेवे नहीं तो, दोश लागे देख ।*
*उसके नाम चढ़के बैकुंठ चढ़े देख ।*
*एकनाथ तो एकहि जाने, एका जनार्दनी देख ।*[173]

इन दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु से एकनाथ की रचनात्मकता का भी पता चलता है, इनकी 'भांड' नामक एक दक्खिनी रचना मिथकों के साथ रचनात्मक प्रयोग को दर्शाती है। इस दक्खिनी रचना में एकनाथ की रचनाशील अभिव्यक्ति और अंतर्वस्तु में निहित मिथकीय चेतना का पता चलता है –

173. वही, पृष्ठ – 295-296

*भाया भांड सुनो जी, आछा भांड बनोजी।*
*ब्रह्मदेव ने वेद पढ़ाया, माया मीठी लागी,*
*सरस्वती के गले पड़ा, उसकी कीरत भागी।*
*विष्णु के पीछे लगा है माया का धंदा,*
*खेल करते फिसल पड़ी, मीठी लागी वृंदा।*
*महादेव बड़ा देव, सब देवन का बाबा,*
*भिल्लनी के पीछे लगा करता तोबा, तोबा।*
*सीता की चोरी करी, रावन कूं धक्का,*
*हनूमान ने नंगी करके, जला दी लंका।*
*विश्वामित्र तप करे भये अनुरानी, मेनका से वश भये हुवी धूलधानी।*
*सोला सहस्र नारी कान्हा गोकुल में खेले,*
*राधिका कूं छोड़के रीसनी कूं भूले।*
*जनार्दन सांई मेरा सब खेल खेला,*
*एकनाथ भांड होके उनका चरण मिला।*[174]

इनकी दक्खिनी रचनाओं के अध्ययन से ये स्पष्ट होता है कि इन्होंने कई प्रवृत्तियों का समन्वय किया है। एक ओर इन्होंने पुराणों के अनुसार ही सृष्टि का विकास क्रम स्वीकार किया है तो दूसरी ओर इन्होंने सूफ़ियों की चिंतन प्रणाली और नाथ पंथियों की साधना प्रक्रिया स्वीकार की है। इनमें भी जोगियों की भाँति फक्कड़पन पाया जाता है। यही कारण है कि इन्होंने अपने मत को प्रकट करने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई है। एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं में काव्य की साज-सज्जा नहीं है, उपदेशों की ऊबड़-खाबड़ बहार है। कभी-कभी उपदेश देते समय वे अधिक उग्र भी हो जाते हैं। भाषा सामाजिक मर्यादा को लाँघ जाती है। वे माया और मायाग्रस्त जन पर फूहड़-अश्लील-गाली की बौछार करने में तनिक भी नहीं झिझकते। चूँकि एकनाथ फ़ारसी के ज्ञाता थे, इसलिए इनकी दक्खिनी रचनाओं में विदेशी शब्दों की प्रचुरता है। इनके समय में महाराष्ट्र मुस्लिम सत्ता के आधिपत्य से ग्रस्त था। इसलिए बहुत से अरबी-फ़ारसी शब्द जनता की भाषा में आ रहे थे, जिसका प्रभाव स्वाभाविक रूप से एकनाथ की

174. वही, पृष्ठ – 297

दक्खिनी रचनाओं में भी दिखाई देता है। यहाँ विषय की प्रस्तुति को ध्यान में रखें तो किसी भी भाषा और समय की तुलना में एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं में अंतर्वस्तु की परिपक्वता को कमतर नहीं माना जा सकता । अपने विषय के साथ अंतर्वस्तु की बुनावट में एकनाथ की रचनाएँ कलात्मक सौंदर्य को अभिव्यक्त करती हैं।

## तुकाराम की दक्खिनी रचनाएँ और उसकी अंतर्वस्तु

तुकाराम दक्खिनी रचनाओं के काल-विभाजन के अंतर्गत उत्तरकाल ( 17वीं से 19वीं शताब्दी ) में आते हैं। इनका जीवन सन् 1608-1649 ई. तक माना जाता है, जो इनकी रचनाओं का समय भी है। तुकाराम के लिए भक्ति, भजन आदि आत्मशांति के लिए बड़े साधन थे। वीर भारत तलवार तुकाराम के संदर्भ में बतलाते हुए कहते हैं कि "संतों की देसी आधुनिकता की प्रखर अभिव्यक्ति शूद्र तुकाराम में हुई। जातिप्रथा और ब्राह्मण की श्रेष्ठता के दम्भ के खिलाफ सबसे ज्यादा आक्रामक तुकाराम ही थे।"[175] इनके बारे में वे आगे लिखते हैं कि "फुले की नजर में तुकाराम एकमात्र ऐसे संत थे जो दलितों शूद्रों को ब्राह्मण धर्म के आध्यात्मिक और कर्मकांडी प्रपंचों से बाहर निकालने का रास्ता दिखाते हैं।"[176]

तुकाराम की दक्खिनी रचनाएँ वारकारी संप्रदाय के सिद्धांतों के अनुकूल और उपदेशात्मक हैं। जिसमें तुकाराम का व्यक्तित्व दक्खिनी के वारकारी संत रचनाकारों से पृथक दिखाई देता है। तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं की विचारधारा पर उत्तर भारतीय संतों की छाप है । मूल रूप से इनकी दक्खिनी रचनाओं में गोपी-प्रेम, पाखंड-परिचय, नीति और भक्ति-उपदेश की बातें मुख्य हैं। गोपी-प्रेम के अंतर्गत इनकी वे रचनाएँ आती हैं जो मराठी काव्य में 'गोलण' के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें कृष्ण लीलाओं का वर्णन किया जाता है। तुकाराम की एक दक्खिनी रचना इस संदर्भ में यथा रूप देखने योग्य है –

---

175. वीर भारत तलवार, महाराष्ट्रीय नवजागरण में निरंतरता, अखिलेश ( संपादक ), तद्भव, वर्ष – 1, अंक – 1, अक्तूबर – 2012 ई. ( पत्रिका का 26वाँ अंक ), पृष्ठ – 115

176. वही, पृष्ठ – 119

*हरि बिन रहिया न जाए जिहिरा, कब की थाड़ी देखे राहा।*
*क्या मेरे लाल कवन चुकी भई, क्या मोहि पासिती बेर लगाई।*
*कोई सखी हरि जावे बुलवान, बारहि डारूँ उस पर ये तन।*
*तुका प्रभु कब देख पाऊँ, पासी आऊँ फेर न जाऊँ।*[177]

[ हरि के बिना अब रहा नहीं जाता, कब से खड़े खड़े उनकी राह देख रहे हैं। मेरे स्वामी लाल मुझसे कौन सी भूल हो गई है ? क्यों मेरे पास आने में इतनी देर लगा रहे हो। कोई सखी हरि को बुलाने तो जाए, मैं उसे अपना ये तन समर्पित कर दूँ। तुकाराम अपने प्रभु को कब देख पाएँगे, पास आ जाएँ तो फिर मैं उन्हें जाने न दूँ। ]

गोपियाँ गोरस बेचने बाज़ार में जाती हैं। श्रीकृष्ण आँखों में झलक जाते हैं। बेचारी, सब कुछ भूल जाती हैं। जहाँ वे पग रखती हैं, जहाँ तक दृष्टि जाती है, वहीं मनमोहन की मूरत खड़ी दिखाई देती है। वे चकित हो जाती हैं लेकिन 'मन का धोका' भाग जाता है। तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में श्रीकृष्ण लीला का यही सात्विक प्रेमभाव मिलता है। उसमें वृन्दावन की कुंज गलियों के लता-वितानों में शृंगारबद्ध आलिंगन करते हुए विहार की कहीं भी झलक नहीं है।

समाज में दरवेश, मलंग आदि फकीर और भगवाधारी साधु भोली जनता को ठगते थे। आज भी ठगते हैं। उन्हें लक्ष्य कर जो दक्खिनी रचनाएँ तुकाराम ने कही हैं, वे पाखंड-परिचय के अंतर्गत आती हैं। तुकाराम कहते हैं कि जिसके हृदय में भगवान हैं उसके लिए 'भगवा' धारण करने से क्या लाभ ?

*तुका बस्तर बीचारा क्या करे,*
*ज्या को चीत भगवान होय।*[178]

[ तुकाराम कहते हैं कि वस्त्र बेचारा उसके लिए क्या कर सकता है, जिसके चित्त में भगवान का वास है। ]

177. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 164
178. वही, पृष्ठ – 164

सच्चा दरवेश वही है जो नर को बूझे अर्थात जो मानव को पहचाने – 'जिकिर करो अल्ला की बाबा, सबत्यां अंदर भेस, कहे तुका जो नर बुझे, सोहि भया दरवेस' । यहाँ मानवतावाद की कितनी सहज अभिव्यक्ति है । इसी प्रकार जब तक इच्छा नहीं मरी, 'लड़के, जोरू, कुटुंब' छोड़कर सिर मुड़ाने से क्या लाभ है ? – 'तुका कुटुम्ब छोरे लड़के जोरू सीर मुड़ाये, जब ये ईछा नहीं मुई, तब तु कीया काये' । इसी प्रकार की मानवीय संबद्धता को तुकाराम ने अपनी दक्खिनी रचनाओं में स्थान दिया है । यही नीति और भक्ति-उपदेश की बातें इनकी दक्खिनी रचनाओं को अपने समकालीनों से अलहदा रूप देती हैं ।

तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में एक विशेष बात यह दिखाई देती है कि इन्होंने अपने प्रिय आराध्य विट्ठल का इसमें कहीं भी नामोल्लेख नहीं किया । तुकाराम ने अपनी दक्खिनी रचनाओं में गोपाल, रघुराज, गोबिन्द, हरि आदि का स्थान-स्थान पर नाम लिया है । इसका कारण यह जान पड़ता है कि इन्होंने अपनी दक्खिनी रचनाएँ हिन्दी भाषी ( विशेष रूप से उत्तर भारतीय ) जनता को लक्ष्य कर गाये हैं जो 'विट्ठल' नाम से बहुत कम परिचित है ।

तुकाराम अपनी इस दक्खिनी रचना में भक्ति-भाव की मनुहारी अभिव्यक्ति करते हुए बतला रहे हैं कि ईश गिरिधर स्वामी तो भक्ति-भाव के भूखे हैं मगर तुकाराम को तो यह राग गाने की कला आती ही नहीं है –

*क्या गाऊँ कोई सुनने वाला, देखें तो सब जग ही भूला ।*
*खेलों अपने राम ही सात, जैसी वसी कर हो, मात !*
*कहाँ से लाऊँ मधुर बानी, रीझे ऐसी लोक-बिरानी ।*
*गिरिधर लाल तो भाव का भूका, राग कला नहिं जानत 'तुका' ।*[179]

[ तुकाराम कहते हैं कि मैं क्या गाऊँ ? कोई सुनने वाला भी तो हो । देखता हूँ कि सब इस संसार में ही भूले हुए हैं । मैं अपने राम के साथ खेल रहा हूँ, अब चाहे जिस तरह भी मेरी मात हो जाए । मैं मधुर वाणी कहाँ

179. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 97

से लाऊँ जिससे यह वीराना लोक उसमें रीझने लगे। गिरिधर स्वामी तो भक्ति-भाव के भूखे हैं, उसके लिए तुकाराम को किसी राग कला का ज्ञान कहाँ है। ]

तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उपदेशात्मक भाव अभिव्यक्त कराते हुए ये कहते हैं कि मनुष्य व्यर्थ में धन वैभव में डूबा है जो क्षणिक है, उस माया के पाश से मनुष्य को बचना चाहिए। इस संसार में न कोई छोटा है, न कोई बड़ा सभी के संरक्षक राम हैं। उस निर्गुण आराध्य स्वामी ( राम ) के प्रति व्यक्त भक्त तुकाराम की लोक मर्यादा क्या है ? यही बात वे अपनी एक दक्खिनी रचना में इस प्रकार बतलाते हैं –

*छोड़े धन-मन्दिर बन बसाया, माँगत टूका घर-घर खाया।*
*तिनसों हम करवों सलाम, म्याँ मुख बैठा राजा राम।*
*तुलसी माला बहुत चर्हावे, हरजी के गुण-निर्गुण गावे।*
*कहे 'तुका' जो साई हमारा, हिरनकश्यप जिन्हें मारहि डारा।*[180]

[ धन मन्दिर छोड़ कर वन में जा बसे हैं, तुकाराम घर-घर माँग कर खाते हैं। उनको मैं सलाम करता हूँ जिनके मुख से राजा राम निकलता है। तुलसी की माला बहुत चढ़ाई लेकिन हरि नाम का गुण निर्गुण ही गाता है। तुकाराम कहते हैं कि मेरे स्वामी वे हैं जिन्होंने हिरण्यकश्यम को मार डाला था। ]

तुकाराम अपनी दक्खिनी रचनाओं में उदार-मानवतावाद को अंतर्वस्तु का हिस्सा बनाते हैं। अपनी एक दक्खिनी रचना में वे मनुष्यत्व की भावना को इस प्रकार अभिव्यंजित करते हैं –

*मंत्र तंत्र नहिं मानत साखी, प्रेम भाव नहिं अंतर राखी।*
*राम कहे त्याके पग हौं लागूँ, देखत कपट अभिमान दूर भागूँ।*
*अधिक-जाति कुल-हीन नहिं जानूँ, जाने नारायन सो प्रानी मानूँ।*
*कहे 'तुका' जीव तन डारूँ वारी, राम उपासिहूँ बलियारी।*[181]

---

180. वही, पृष्ठ – 97
181. वही, पृष्ठ – 98

[ सखी मैं मंत्र-तंत्र नहीं मानता हूँ, प्रेम भाव के लिए किसी से भेद नहीं रखता हूँ। जो राम कहते हैं यानी राम का स्मरण करते हैं मैं उनके पाँव लगता हूँ, कपट और अभिमान को देख दूर भागता हूँ। मैं जाति-पाति को अधिक नहीं मानता, किसी को कुल हीन नहीं जानता, जो नारायण को जानता है उसी को सच्चा प्राणी मानता हूँ। तुकाराम कहते हैं कि यह जीव तन मैं उसको समर्पित कर दूँ जो राम की उपासना में बलिहारी है। ]

तुकाराम ने अपनी दक्खिनी रचनाओं में श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का मनोहारी दृश्य प्रस्तुत किया है। उनकी यह दक्खिनी रचना इसी संदर्भ में है जिसमें ग्वालनी के नन्द कुँवर कन्हैया की बाल लीला बतलाई गई है –

*चुरा चुरा कर माखन खाया, गौलनी का नन्द कुमर कन्हया।*
*करे बराई दिखवात मोहि, जानत हूँ प्रभुपना तेरा सब हि।*
*और बात सुन ऊखल सूँ गला, बाँध लिया आपना तू गोपाला।*
*फेरत बन बन गाऊँ धरावत, कहे 'तुकाया' बन्धु लकरी ले ले हत।*[182]

[ चुरा चुरा कर जो माखन खा जाता है, वह ग्वालनी का नन्द कुँवर कन्हैया है। मुझे बड़ाई करके दिखाता है, मैं तुम्हारा सब प्रभुपना जानता हूँ। गोपाल तुम मेरी बात सुनो, अपने गले ऊखल बाँध लो। तुम वन में जाकर गाय चराते हो, तुकाराम बन्धु कहता है कि तुम अपने हाथ में लकड़ी ले लो। ]

तुकाराम को विरह दशा में यह भाव जागे हैं कि आराध्य स्वामी की शरण में ही जीवन बिताया जाए। वे अपनी इस दक्खिनी रचना में विरह के साथ उस ईश का स्मरण इस प्रकार करते हैं –

*कब मरूँ पाऊँ चरन तुम्हारे, ठाकुर मेरे जीवन प्यारे।*
*जग डरे ज्याकूँ सो मोहि मीठा, मीठा दर आनंद सोहि पैठा।*
*भला पाऊँ जनम, इन्हें बेर, बस माया के असंग फेर।*

182. वही, पृष्ठ – 98

*कहे 'तुका' धन मान हि दारा, वो हि लिये गुंडलिया पसारा।*[183]

[ मैं कब मरने के बाद तुम्हारे चरणों में आ पाऊँगा, मुझे जीवन में ठाकुर ही प्यारे हैं। जिससे संसार डरता है वही मेरे लिए मीठा है, उस में मिठास भरा आनंद व्याप्त है। भला क्या मैं फिर इस बार जनम पाऊँगा, माया के इस असंग फेर में बँधा रहूँगा। तुकाराम कहते हैं धन और मान त्याग दिया है, अब तो उस हरि के लिए ही अपनी झोली पसार रखी है। ]

इनकी दक्खिनी रचनाओं में निर्गुण राम की भक्त-वत्सलता का भी चित्रण मिलता है। तुकाराम की इस दक्खिनी रचना में इस प्रसंग को भलीभाँति जाना जा सकता है –

*दासों पाछें दौरे राम, सोवे, खड़ा आपें मुकाम।*
*प्रेम रसड़ी बाँधी गले, खैंचे चले उधर चले।*
*आप ने जनसूँ भूल न देवें, कर हि धर आधें वाट बतावें।*
*'तुका' प्रभु दीन दयाला, वारी रे तुज पर हौं गोपाला।*[184]

[ राम अपने दासों के पीछे-पीछे दौड़ते हैं, सोते हुए, खड़े होकर वह उन्हें अपने मुक़ाम पर ले जाते हैं। प्रेम की रस्सी उनके गले बँधी हुई है, जिधर खेंचते हैं वे उधर ही चल देते हैं। आप नहीं जानने वह उसे भूलते नहीं हैं, हाथ थाम कर वे उन्हें सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। तुकाराम कहते हैं कि उनके प्रभु दीनदयाल हैं, उस गोपाल पर वे अपना सर्वस्व समर्पित कर सकते हैं। ]

नाम स्मरण के महत्त्व की बात तुकाराम ने भी अपनी दक्खिनी रचनाओं में कही है। इनके अनुसार निर्गुण राम नाम के स्मरण से भेदभाव जैसी स्थिति मिट जाती है। और तुकाराम के लिए तो वह आदर के योग्य है जो अपने हृदय में राम नाम की महिमा का ध्यान लगाता है –

*राम को नाम जो लेब बारों बार, त्याके पाऊँ मेरे तन की पैजार।*

183. वही, पृष्ठ – 100
184. वही, पृष्ठ – 100

*हाँसत खेलत चालत बाँट, खाना खाते सोते खाट ।*
*जा तन सूँ मुजे कछु नहिं प्यार, असते के नहिं हिंदु धेड चँभार ।*
*ज्या का चित्त लगा मेरे राम को नाम, कहे 'तुका' मेरा चित्त लगा त्याके पाव ।*[185]

[ जो राम का नाम बारंबार लेता है, उसके पाँव में मेरा जूता पहना दो । हँसते खेलते चलते उसे उसी राम का ध्यान लगा रहता है, खाना खाते और सोते हुए वह उसी की राह देखता है । इस शरीर से मुझे तो कुछ प्यार नहीं है, हिन्दू लोग धेड और चमार लोगों को ठीक से रहने क्यों नहीं देते ? जिसका हृदय मेरे राम के नाम में लगा है, तुकाराम कहते हैं कि उनका हृदय उनके पाँव लगता है । ]

तुकाराम संसार की प्राकृतिक क्रियाओं को देख उन पर प्रश्नवाचक दीठ लगाते हुए मालूम पड़ते हैं । ये बात उनकी इस दक्खिनी रचना में रोचकता पैदा करती है –

*आपें तरे त्याकी कोण बराई, औरत कूँ भलो नाम धराई ।*
*काहे भूमि इतना भार राखे, दुभत धेनु नहिं दुध चाखे ।*
*बरसते मेघ भलते हि बिरखा, कोन काम आपनी उन्होत रखा ।*
*काहे चंदा सुरज खावे फेरा, खिन एक बैठण पावत घेरा ।*
*काहे परसि कंचन करे धातु, नहिं मोल तुटत पावत धातु ।*
*कहें 'तुका' उपकार हि काज, सब कर, कर रहिया रघुराज ।*[186]

[ स्वयं ही पार उतर जाने वाले की कोई क्या बड़ाई करे, औरत ने भले इसका नाम धारण किया है । धरती इतना भार क्यों सहन करती है ? गाय का दूध दूह लिया जाता है जिसे वह चख भी नहीं पाती । बरसते मेघों के लिए बरसात व्यर्थ ही है, भला उसका कौन सा काम इससे संभव हो पाता है ? सूरज और चाँद किस लिए फेरा खाते हैं ? जबकि एक क्षण बैठ कर भी हम उस गति को पूरा कर सकते हैं । किस लिए पारस किसी धातु को सोने में बदल देता है ? और क्यों नहीं उस धातु का मोल हो पाता है ? तुकाराम कहते हैं कि परोपकार ही कार्य है, जिसे सब करते हैं, यह कराने वाला स्वयं रघुराज है । ]

185. वही, पृष्ठ – 101
186. वही, पृष्ठ – 102

तुकाराम के दक्खिनी रचनाओं की यह विशेषता है कि उसमें कम से कम शब्दों में वे अपनी बात कह लेते हैं। श्रीकृष्ण की लीलाओं का सात्विक आनंद तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में इसी प्रकार अभिव्यक्त हुआ है। वे गोपियों की बातों में इतनी सादगी से लीला का वर्णन कर देते हैं कि जानने वाला भाव-विभोर हो उठता है –

*लाल कमली वोढ़े पेनाये, बेसु हरि थे कैसे बनाये।*
*कहे सखि तुम्हें करति सोर, हिरदा हरि का कठिन कठोर।*
*नहिं क्रिया सरम कछु लाज, और सुनाऊँ बहुत है, भाज।*
*और नाम रूप नहिं गोवलिया, 'तुका' प्रभु माखन खाया।*[187]

[ लाल कंबल पहन ओढ़ कर हरि कैसा वेश बनाए हुए थे, हे सखी ! तुम ही पुकार लगाओ, हरि का हृदय तो कठिन कठोर मालूम होता है। न कोई कर्म न कुछ लाज, सुनाने को बहुत-सी बातें हैं। उसका न कोई नाम है और न कोई रूप है, गोपियों तुकाराम के प्रभु माखन खाते हैं। ]

तुकाराम निर्गुण राम के स्वरूप के परम उपासक हैं। इनकी दक्खिनी रचनाओं में विट्ठल से अधिक स्नेह के पात्र निर्गुण राम की महिमा और श्रीकृष्ण की लीला को समझा गया है, जो कि मराठी वारकरी संत तुकाराम की भक्ति-साधना का अपवाद ही है। तुकाराम का हृदय भक्त का हृदय है। उन्हें अपनी आस्था का आग्रह नहीं, दूसरों के विचार से विरोध नहीं। वे विश्वासपूर्ण अडिगता के साथ भक्ति-भाव में तल्लीन हैं। इस दक्खिनी रचना में तुकाराम अपने इसी मनोभाव को सीधे कहते हैं – 'राम भजन सब सार मिठाई'। बाक़ी अंतर्वस्तु पक्ष में यह रचना बहुत कुछ कहती है –

*राम भजन सब सार मिठाई, हरि संताप जनम दुख राई।*
*दूध भात घृत सकर पारे, हरते भूक नहिं अंततारे।*
*खावते जुग सब चलि जावे, खटा मिठा फिर पचतावे।*

187. वही, पृष्ठ – 103-104

*कहे 'तुका' राम रस जो पीवे, बहुरि ही फेरा वो कबहु न खावे।*[188]

[ राम का भजन सब बातों का सार है, वह इस रूप में मिठाई जैसी है। जिससे जीवन के सारे संताप उस हरि की कृपा से दूर हो जाते हैं। दूध और भात चीनी के साथ खाने जैसी बात है, यह हृदय की भूख आंतरिक है जिसका अंत नहीं है। सारे संसार में युगों से इसे सब लोग खाए जाते हैं, बाद में इसके परिणामों के प्रभाव में पछताते हैं। तुकाराम कहते हैं कि जो राम के प्रति भक्ति का रसास्वाद कर लेता है वह जनम-मरण के चक्र का फेरा कभी नहीं खाता। ]

तुकाराम जीवन-मरण के इस चक्र में माया बंधन के साथ जीव की सांसारिक दशा पर व्यंग्य करते हैं। यहाँ इस दक्खिनी रचना में इसी से जुड़ी बातें हैं। तुकाराम तन और मन की किए सब पाने की बात बतलाते हैं। बस इच्छा शक्ति इस बात में होनी चाहिए कि माया बंधन से दूर जाने के लिए हम इन पर नियंत्रण रख सकें। जिसके लिए 'राम नाम मोल' ही अनमोल आधार है –

*बार बार काहे मरत अभागी, बहुरि मरन से क्या तोरे भागी।*
*ये हि तन करते क्या ना होय, भजन भगति करे बैकुंटे जाय।*
*राम नाम मोल नहिं बेचे कब री ? वो हि सब माया छुरावत सगरी।*
*कहे 'तुका' मन सूँ मिल राखो, रामरस जिह्वा नित चाखो।*[189]

[ अभागी बार-बार क्यों मरती हो ? बहुरी तुम्हारे मरने से तुम्हारा क्या सौभाग्य है ? इस शरीर के किए क्या नहीं संभव है ? भजन-भक्ति करके वैकुंठ पाया जा सकता है। राम का नाम कब मोल बिकता है ? वही तो संसार में सब को माया से मुक्ति दिलाते हैं। तुकाराम कहते हैं कि अपने मन से उस राम के प्रति मेल रखो और रामरस का अपनी जिह्वा से नित आस्वाद लो। ]

188. वही, पृष्ठ – 105
189. वही, पृष्ठ – 106

वारकरी संत तुकाराम मराठी मानुष और विट्ठल के अनुयायी हैं। वे परम वैष्णव उपासक हैं। यही कारण है कि अपनी इस दक्खिनी रचना में वे स्वयं को वैष्णव भक्ति परंपरा का दास मानते हुए विष्णु के अवतारों को लोक के समक्ष अपना स्वामी बतलाते हैं –

*हम दास तीन्ह के सुना हो लोकाँ ! रावण मार विभीषण दिई लंका।*
*गोवरधन नख पर गोकुल राखा, बर्सन लागा जब मेहूँ पत्थर का।*
*वैकुंठ नायक काल कौंसासुर का, दैत डुबाय सब मँगाय गोपिका।*
*स्तंभ फोड़ पेट चिरीया कश्यप का, प्रह्लाद के लिये कहे भाई 'तुका' याका।*[190]

[ अरे लोगों सुनो, मैं उनका दास हूँ जो रावण को मार लंका विभीषण को दे देते हैं। जो गोकुल में गोवरधन पर्वत को अपनी अँगुली की नोक पर रख लेते हैं, जब मेह में पत्थर की बारिश होने लगी थी। वैकुंठ नायक असुर कंस को जिसने मार कर गोपिकाओं को सब मँगा दिया। जिसने स्तंभ फोड़ कर हिरण्यकश्यप का पेट चीर दिया था, तुकाराम उसे प्रह्लाद के स्वामी के रूप में जानते हैं। ]

तुकाराम ने अपने एक दोहे से स्पष्ट किया है कि मनुष्य जो चाहता है उसी ओर मुड़ता है। यह मनुष्य के स्वभाव पर निर्भर करता है कि वह किसे अपनाए और किसे त्याग दे –

*लोभी के चित धन बैठे कामिनी चित काम।*
*माता के चित पूत बैठे 'तुका' के मन राम॥*[191]

[ जैसे लोभी के हृदय में धन की कामना है, कामिनी के हृदय में काम की इच्छा है और माता के हृदय संतान ही बैठा है वैसे ही तुकाराम के मन में राम का निवास है। ]

अपने आराध्य स्वामी के प्रति तुकाराम का समर्पण कुछ इस प्रकार का है –

*संत जन पन्हियाँ ले खड़ा राहूँ ठाकुर-द्वार।*

190. वही, पृष्ठ – 106
191. वही, पृष्ठ – 107

*चलत पाछे हूँ फिरों रज उड़त लेऊँ सीर ॥*[192]

[ संत समाज ठाकुर स्वामी के द्वार पन्हियाँ लेकर खड़ा है, उनके पीछे पीछे चलने से जो धूल उड़ रही है उसको माथे हाथ रख लेने की इच्छा है। ]

तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में निर्गुण राम नाम के स्मरण का बहुत उल्लेख मिलता है। वे इसको भक्ति-भाव का श्रेष्ठ आयाम मानते हैं। दक्खिनी का उनका यह दोहा इसी स्मरण की चाह को अभिव्यक्ति देता है –

*'तुका' बड़ो मैं ना मनूँ जिस पास बहु दाम।*
*बलिहारी उस मुख की जिस्ते निकसे राम ॥*[193]

[ तुकाराम कहते हैं कि मैं उसे बड़ा नहीं मानता जिसके पास बहुत धन-संपत्ति है बल्कि उस मुख छवि वाले पर समर्पित हो जाना चाहता हूँ जिसके मुख से राम का नाम सुनने को मिलता है। ]

इन्होंने स्पष्ट कहा है कि भक्त का परमात्मा से इस प्रकार का प्रेम होना चाहिए जैसे पतंगा दीपक से प्रेम जतलाता है –

*'तुका' प्रीत राम सूँ तैसी मीठी राख़।*
*पतंग जाय दीप परे करे तन की खाक ॥*[194]

[ तुकाराम कहते हैं कि उस राम से ऐसी मीठी प्रीत रखो जैसे पतंगा दीपक के पास जाने के लिए उत्कंठित होता है और अपने तन को जला कर समाप्त कर देता है। ]

---

192. वही, पृष्ठ – 107
193. वही, पृष्ठ – 107
194. वही, पृष्ठ – 108

तुकाराम ने संतों और सज्जन लोगों की संगत को महत्त्व दिया है। इनकी दक्खिनी रचनाओं में सज्जन लोगों की पहचान भी बतलाई गई है, ये दोहा इसी संदर्भ में है –

*'तुका' सज्जन तिन सूँ कहिए जिथनी प्रेम दुनाय।*
*दुर्जन तेरा मुख काला थोता प्रेम घटाय॥*[195]

[ तुकाराम सज्जन उसे मानते हैं जिनका प्रेम दुनिया भर के लिए है, दुर्जन का प्रेम थोथा है उसमें दुनिया भर की प्रीति कहाँ ? तुकाराम कहते हैं कि दुर्जन मुख काला पड़ गया है। ]

तुकाराम अपने एक दक्खिनी दोहे में बतलाते हैं कि किस प्रकार काफ़िर और अल्लाह के बंदे में स्वभाव का अंतर होता है –

*काफर सो ही आपण बूझे अल्ला दुनिया भर।*
*कहे 'तुका' तुम सुनो रे भाई हिरदा जिन्ह का कठोर॥*[196]

[ क़ाफ़िर को केवल अपनी सुध रहती है जबकि अल्लाह दुनिया भर को बूझने वाला है। तुकाराम कहते हैं कि भाई सुनो ! जिनका हृदय कठोर है वही क़ाफ़िर बंदा है, अल्लाह तो रहम दिल वाला है। ]

तुकाराम मनुष्य संगति को स्वाभाविक रूप में स्वीकार करने का पक्ष लेते हैं और मानवीय भावना की क़द्र करने की बात बतलाते हैं –

*चित्त मिले तो सब मिले नहिं तो फुकट संग।*
*पानी पाथर येक ठोर कोरा न भीजे अंग॥*[197]

[ तुकाराम कहते हैं कि हृदय की संगत मिल जाए तो सब का मेल हो जाता है नहीं तो किसी अन्य की संगति व्यर्थ प्रतीत होती है। पानी और पत्थर इस बेमेल संगति के ही शिकार हैं कि एक साथ रह कर भी उनका अंतरंग मेल नहीं खाता, पानी में रह कर भी पत्थर कहाँ भीगता है ? ]

---

195. वही, पृष्ठ – 108
196. वही, पृष्ठ – 108
197. वही, पृष्ठ – 109

यह ध्यान देने की बात है कि तुकाराम अपनी दक्खिनी रचनाओं में कविताई का साथ नहीं छोड़ते। इनका ये दोहा दक्खिनी कविता के नमूने के साथ अपने विषय क्षेत्र में प्रेम अभिव्यंजना को समाहित किए हुए है। वे प्रेम नीति और भक्ति-उपदेश की बातों को इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

*तुका रामसुं चीत बांध राषु तैसा आपणी हात।*

*धेनु बछरा छोर ज्याव प्रेम न सुटे सात॥*[198]

[ तुकाराम कहते हैं कि राम को अपने हृदय से बाँध कर रखना तो अपने हाथ में है, गाय बछड़ा छोड़ चली जाती है लेकिन उनके बीच के वात्सल्य प्रेम का भाव उनका साथ नहीं छोड़ती। ]

तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं के अध्ययन से ये बात स्पष्ट होती है कि इनकी दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु नामदेव, गोंदा और एकनाथ के विषयों की अगली कड़ी है। तुकाराम वारकरी संत और विट्ठल भक्त होने से आगे बढ़कर अपनी रचनाओं में विष्णु अवतारों के परम वैष्णव उपासक दिखाई देते हैं। इन्होंने बाह्याडंबर और धार्मिक लंपटता को धर्म और भक्ति क्षेत्र में अहितकर मानते हुए उनका बहिष्कार किया। यही कारण है कि इन्होंने अपने निर्गुण-सगुण वैष्णव मत को प्रकट करने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई है। तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में कविताई अंतर्वस्तु का अभिन्न अंग है। वे उपदेशात्मक होकर भी अपनी रचनात्मकता से कविता का भाव जाने नहीं देते। तुकाराम के समय तक महाराष्ट्र मुस्लिम सत्ता के आधिपत्य में ही था। जिसका प्रभाव स्वाभाविक रूप से तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं पर भी दिखाई देता है। ऊपर हमने तुकाराम की प्राप्त दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु से परिचय पाया। अब हम रचनाकाल के प्रभावों को इनकी दक्खिनी रचनाओं में देख सकते है। अपने विषय के साथ अंतर्वस्तु की बुनावट में तुकाराम की रचनाएँ दूसरे वैष्णव संत कवियों से अलग दक्खिनी रचनाओं

198. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 327

के काव्यात्मक सौंदर्य को अभिव्यक्त करती हैं। जो मराठी के साथ दक्खिनी में रचना करने वाले संत कवियों की वाणी की ही अगली कड़ी मालूम होती है।

हमने इस अध्याय में 'मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : अंतर्वस्तु' के अंतर्गत नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की प्राप्त दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु का अध्ययन किया। जिसके फलस्वरूप प्राप्त विषयों की चर्चा हम अध्याय के आरंभ से ही करते आए हैं। यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु में अभिव्यक्ति के स्तर पर समानता है। कहीं अंतर है तो वह शब्दावली के प्रयोगों को लेकर ही है। मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं की अंतर्वस्तु में विविधता के साथ जितनी सधी हुई अभिव्यक्ति देख पाते हैं उतनी इनकी काव्य शैली में मालूम नहीं होती। इसका कारण यह है कि मराठी संतों के लिए दक्खिनी में रचना करना एकदम नई-नई बात थी, जिसमें छंद प्रयोगों के स्तर पर ऊबड़-खाबड़ प्रवृत्ति एक सामान्य बात है। दक्खिनी में रचना करने वाले मराठी संत मूल रूप से उत्तर भारतीय जनता से संपर्क साधने हेतु और उसी क्षेत्र में फक्कड़ घुमंतू स्वभाव रखने के कारण दक्खिनी में भी रचनाएँ करते थे ताकि उनके उपदेशों की वाणी वहाँ की जनता भी सहज रूप से स्वीकार कर सके। दक्खिनी किस रूप में विकसित होकर रचना का माध्यम बनी ? इस पर हम पहले अध्याय में चर्चा कर चुके हैं। यहाँ इतना ही कहना उचित होगा कि मुस्लिम शासन और सूफ़ी-संतों के प्रभाव में दक्खिनी 13वीं सदी से ही रचना का मुख्य माध्यम थी, जिसे जनता सहजता से समझने के साथ अपना भी रही थी।

**********

# तीसरा अध्याय

## मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : शिल्प

# तीसरा अध्याय

## मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : शिल्प

**मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं का शिल्प विधान**

शिल्प वास्तव में रचना का रूप-सौंदर्य है। यह सीधे अर्थों में रचना का बाहरी आवरण या 'ढाँचा' है जिसमें रचना की अंतर्वस्तु समाहित होती है। किसी रचनाकार का स्थापित शिल्प विधान ही उसकी अभिव्यक्ति को मौलिकता प्रदान करता है। अंतर्वस्तु ( कथ्य ) की संप्रेषणीयता का आधार रचना का शिल्प विधान ही होता है, जिसके माध्यम से कोई पाठक किसी रचना को सहजता पूर्वक ग्रहण कर पाता है। हम कह सकते हैं कि किसी भी समय की रचनाओं को समग्रता में समझने हेतु उसके शिल्प विधान से परिचय अत्यंत आवश्यक है। इसलिए मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं का शिल्प विधान हमारे लिए महत्त्व रखता है।

संत साहित्य की एक बड़ी विशेषता यह है कि संत वाणी की अभिव्यंजना में ही शिल्प समाहित है। उनके कहन की स्वगत विशेषता ही उनकी रचनाओं का शिल्प विधान है। यह कहना अधिक प्रासंगिक होगा कि संत काव्य अपनी शिल्पगत विशेषताओं में मध्ययुगीन होते हुए भी काव्य-शिल्प में बहुत हद तक शास्त्र सम्मत है। वहीं मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं के हवाले से यह बात कही जा सकती है कि इन संतों की दक्खिनी रचनाओं में काव्य-शिल्प अधिकाधिक शास्त्र सम्मत नहीं हो तो भी शिल्प विधान काव्यशास्त्र के प्रतिकूल नहीं ठहरता। मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं के शिल्प पर बात करने हेतु इस अध्याय में आगे हम उनकी दक्खिनी रचनाओं में शिल्प विधान के विविध पक्षों पर चर्चा करेंगे। मुख्य रूप से मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं का शिल्प विधान जानने हेतु भाषा-शिल्प; लय,

तुक और गेय का संगीतात्मक विधान; मिथक प्रयोग; प्रतीक योजना; बिम्ब विधान; छंद योजना; रस; अलंकार; शब्द शक्ति; शब्द गुण इत्यादि पर बात केंद्रित करना ही उचित है।

**नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम का दक्खिनी शिल्प**

नामदेव मूलतः मराठी भाषा के कवि हैं। किन्तु इन्होंने दक्खिनी में भी फुटकल रचनाएँ की हैं। इनकी वाणी सिक्खों के पवित्र धर्मग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहिब' में भी संकलित है। वहीं निर्गुण संत कवियों में भी नामदेव का स्थान सदैव आदर के योग्य है। बहरहाल, मराठी के साथ दक्खिनी में भी रचनाएँ करने से नामदेव का नाम दक्खिनी के कवियों में भी गिना जाता है। नामदेव की प्राप्त दक्खिनी रचनाओं के अध्ययन से यह बात स्पष्ट होती है कि शिल्प विधान के स्तर पर ये रचनाएँ बहुत सधी हुई नहीं हैं। उदाहरण के लिए नामदेव की दक्खिनी रचनाओं में छंद प्रयोग काव्यशास्त्र सम्मत नहीं है। जैसे उनका यह दक्खिनी पद देखिए जो लयबद्ध होते हुए भी छंद की दृष्टि से नियमबद्ध या रुचिकर नहीं है –

*साँप कुच छोडे बिख नहीं छाँडे। उदक माँहि जैसें बक ध्यान माँडे॥*
*काहे को कीजे ध्यान जपना। जब ते सुध नहीं मन अपना॥*
*नामे के स्वामी लाह के झगड़ा। राम रसायन पिवो डे रगड़ा॥*[199]

लेकिन 13वीं सदी में ही नामदेव जिस प्रकार की दक्खिनी में रचनाएँ कर रहे थे, वह भाषा की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व रखती है। इस संदर्भ में श्रीराम शर्मा लिखते हैं "नामदेव के हिन्दी पदों से यह स्पष्ट होता है कि इनमें हिन्दी का वह रूप प्रयुक्त हुआ है, जो 13वीं शती के उत्तरार्द्ध और 14वीं शती के पूर्वार्द्ध में उत्तर भारत में समझा और बोला जाता था।"[200] नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का शिल्प इस रूप में हमारे अध्ययन के अनुकूल है। हमें शिल्प संरचना के विविध आयामों को इसमें समझने का प्रयास करना चाहिए।

199. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 40-41
200. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, वही, पृष्ठ – 62

गोंदा मराठी भाषा के कवि हैं। इन्होंने दक्खिनी में बहुत कम लिखा है। जो लिखा है वह मूलतः नामदेव और तत्कालीन सुलतान की संवाद कथा है। कहा जाता है कि गोंदा संत नामदेव के पुत्र थे। बहरहाल, आज गोंदा का नाम दक्खिनी के मराठी कवियों में प्रमुखता से गिना जाता है। ऐसे तो गोंदा की प्राप्त दक्खिनी रचनाओं के माध्यम से उनके शिल्प विधान को समग्रता में जानना अपर्याप्त जान पड़ता है। मगर इस अध्याय की आवश्यकता के अनुकूल फ़िलहाल हमें गोंदा की प्राप्त दक्खिनी रचनाओं में शिल्प पक्ष के विविध आयामों को समझना चाहिए।

एकनाथ अपनी मातृभाषा मराठी के प्रमुख संत कवियों में से हैं। किन्तु मराठी के साथ दक्खिनी में कुछ फुटकल रचनाएँ करने से एकनाथ का नाम दक्खिनी कवियों में भी आदर भाव से लिया जाता है। इनकी प्राप्त दक्खिनी रचनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि शिल्प विधान के स्तर पर भी ये रचनाएँ दक्खिनी का प्रतिनिधित्व करती हैं। मुसलमानों के संपर्क में रह कर कुछ समय बिताने के कारण एकनाथ के दक्खिनी शिल्प पर अरबी-फ़ारसी भाषिक शब्दावली का प्रभाव अधिक लक्षित होता है। इसका कारण यह भी है कि एकनाथ पहले मराठी संत कवि हैं जो अपनी भक्ति-भावना में मुस्लिम आस्थाओं के साथ अंतर्निहित उनके सामाजिक-आध्यात्मिक आचार व्यवहार के प्रभावों को आत्मसात करना चाहते हैं। इस प्रकार एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं के शिल्प विधान का अध्ययन शिल्प संरचना के विविध आयामों को जानने समझने की दृष्टि से आवश्यक जान पड़ता है।

तुकाराम की मातृभाषा मराठी है। ये मराठी भाषा के प्रसिद्ध संत कवि होने के साथ दक्खिनी के कवियों में भी अपना स्थाई महत्त्व रखते हैं। दक्खिनी में इनकी फुटकल रचनाएँ ही प्राप्त होती हैं। अन्य मराठी संतों की तरह इनके आराध्य भी भगवान विट्ठल हैं। किन्तु अपनी दक्खिनी रचनाओं में तुकाराम विट्ठल नाम का स्मरण नहीं करते। इसका कारण यह हो सकता है कि ये दक्खिनी के माध्यम से उत्तर भारत में बसे लोगों तक अपनी वाणी पहुँचाना चाहते थे, जिसके लिए उन्हीं लोगों की परिचित शब्दावली

में बात करना उचित था। फिर भी यह ध्यान रहे कि अन्य मराठी संतों के समान ही तुकाराम की आराध्य आस्था भगवान विट्ठल के प्रति कम नहीं थी। दक्खिनी की कुछ रचनाओं में इन्होंने राम के निर्गुण स्वरूप के साथ कृष्ण लीला का भी सात्विक स्मरण किया है। अपने मराठी संत काव्य से तुकाराम को अपार कीर्ति अर्जित हुई। जिस कारण इनका प्रभाव आज भी मराठी जनमानस पर लक्षित होता है। बहरहाल, तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं का शिल्प अन्य मराठी संतों की अपेक्षा अधिक परिष्कृत है। इनकी रचनाओं ने दक्खिनी भाषा को समृद्ध किया और उसकी शब्दावली को परिमार्जित रूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

**भाषा-शिल्प**

कहन की शैली भाषा में ही घटित होती है। इसलिए भाषा रचना शिल्प का आधारभूत घटक है। मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं का भाषा-शिल्प बहुत हद तक मध्ययुगीन भक्ति-काव्य के सामाजिक-आध्यात्मिक संदर्भों से सम्बद्ध है। रामचन्द्र शुक्ल इसी परिप्रेक्ष्य में नामदेव की दक्खिनी रचनाओं पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि "नामदेव की रचनाओं में यह बात साफ दिखाई पड़ती है कि सगुण भक्ति के पदों की भाषा तो ब्रज या परंपरागत काव्य भाषा है, पर 'निर्गुण बानी' की भाषा नाथपंथियों द्वारा गृहीत खड़ी बोली या सधुक्कड़ी भाषा।"[201] बहरहाल, नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का भाषा-शिल्प आरंभिक दक्खिनी का नमूना है। इस प्रकार हमें इनकी दक्खिनी रचनाओं में भाषा-शिल्प की पड़ताल, दक्खिनी शब्दावली और भाषिक गठन को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए। अन्य मराठी संत गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं के भाषा-शिल्प का अध्ययन भी इसी पर आधारित होगा।

201. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वही, पृष्ठ – 45

नामदेव की दक्खिनी रचनाओं के भाषा-शिल्प को जानने के लिए हमें इनके घुमंतू संत स्वभाव को ध्यान में रखना होगा। नामदेव की दक्खिनी रचनाओं की भाषा के संदर्भ में इक़बाल अहमद लिखते हैं कि "नामदेव की हिन्दी कविता में हमें मराठी के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों की भाषाओं का भी प्रभाव दिखायी देता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि नामदेव भ्रमणशील सन्त थे। उन्होंने पंजाब, राजस्थान और उत्तर भारत का भ्रमण किया था।"[202] आगे इक़बाल अहमद नामदेव की भाषा शब्दावली पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि "नामदेव की कविताओं में अरबी-फ़ारसी के शब्द बहुलता से पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि समुद्र के पश्चिमी तट से अरबों का विशेष संबंध रहा है और फिर मुसलमानों की विजय के पश्चात महाराष्ट्र मुसलमानों के प्रभाव में रहा है।"[203] इस तरह हम देखते हैं कि नामदेव ने जिस भाषा में दक्खिनी रचनाएँ लिखी हैं वह मिलीजुली भाषा है अथवा हम दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि तत्कालीन समाज में प्रचलित भाषा को ही इन्होंने अपनी रचनाओं के लिए चुना। जैसे उनका यह दक्खिनी पद देखिए जिसमें उनकी भाषा की ये विशेषताएँ दृष्टव्य हैं –

*जैसे भूखे प्रीत अनाज। तृखावन्त जल सेती काज॥*
*जैसे मूढ़ कुटुम्ब परायण। तैसे नामें प्रीत नरायण॥*
*जैसे पर पुरखा पर नारी। लोभी नर धन का हितकारी॥*
*कामी पुरखा कामिनी प्यारी। ऐसे नामा प्रीत मुरारी॥*
*सोई प्रीत जे अभिलाये। गुरु प्रसादा दूधा जाये॥*
*जैसी प्रीत बालक अर माता। तैसी हर सेती मन राता॥*
*प्रणवे नामदेव लागी प्रीत। गोविन्द बसे हमारे चीत॥*[204]

हम देखते हैं कि इनकी भाषा क्षेत्रीय प्रभावों का पूरी तरह परित्याग नहीं कर सकी है। इसमें दक्खिनी का गुण विशेष महत्त्व रखता है। विनयमोहन शर्मा संत नामदेव की दक्खिनी रचनाओं की भाषा के संदर्भ में

202. इक़बाल अहमद, दक्खिनी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, वही, पृष्ठ – 88-89
203. वही, पृष्ठ – 89
204. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 44

लिखते हैं कि "नामदेव की भाषा में किसी कृत्रिम एकरूपता की अपेक्षा नहीं की जा सकती। वे संत थे। उन्हें अपनी बात कहनी थी, भाषा का रूप-प्रदर्शन उनका ध्येय न था।"[205] इनकी भाषायी शब्दावली में विविधता का मुख्य कारण यह है कि नामदेव जिस प्रान्त के व्यक्तियों के संपर्क में आए, उसी प्रान्त की भाषा के शब्द इन्होंने ग्रहण कर लिए। वास्तव में इनकी भाषा में खड़ी बोली के उस रूप का आभास मिलता है जो उस समय मध्यदेश और पंजाब में विकसित हो रही थी। जैसे उनका यह दक्खिनी पद देखिए जिसमें उनकी भाषा की यह शैली दृष्टव्य है –

*राम आपणा पयाणा राम आपणा पयाणा। नामदेव मूरख लोग सयाना॥*
*जब हम हिरदे प्रीत बिचारी। रजबल छाँडी के भये भिखारी॥*
*जब हरि कृपा करी हम जाणा। तब था चेरा अब भये राणा॥*
*नामदेव कहे मैं नरहरी गायो। पद खोवत परमारथ पायो॥*[206]

यह काव्य-भाषा संत साहित्य के संदर्भ में सधुक्कड़ी के रूप में जानी जाती है। लगभग अधिकांश संत साहित्य, विशेषकर निर्गुण धारा की संत वाणी इसी सधुक्कड़ी में कही गई है।

नामदेव की दक्खिनी रचनाओं की भाषा में प्रयुक्त सामाजिक शब्द-पद प्रमुखता से आए हैं जो इनके भाषा-शिल्प की लोकधर्मिता की ओर संकेत करते हैं – *कुटुम्ब, बैरागी, कुंजर, सुनारा, जुआरी, ढेढ, अहीरु, काजी, दरजी, बह्मन, सिंपी* इत्यादि। इनकी दक्खिनी रचनाओं की भाषा में दार्शनिक और आध्यात्मिक शब्दावली की बहुलता तत्कालीन भक्ति आंदोलन की सर्वव्यापकता को चिह्नित करती है – *माया, ब्रह्म, लीला, निरबानु, अलष, मुकति, गिआन, तालाबेली, भवसागर, अंम्रित, अउघट, बैकुण्ठ, जीव, देउल* इत्यादि। नामदेव अपने आराध्य को दक्खिनी रचनाओं में इन शब्द संबोधनों के साथ याद करते हैं। यहाँ यह कहना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि ये नाम या संबोधन हिन्दू-मुस्लिम समुदाय

205. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 123
206. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 23-24

की साझा संस्कृति की ओर संकेत करते हैं – *गोबिंदु, मुरारी, राम, बीठलु, गोपाल, माधउ, बिसमिलि, खुदाइ, खेचरजी* इत्यादि। अपनी दक्खिनी रचनाओं की भाषा शैली में नामदेव दक्खिनी के तत्कालीन मुस्लिम रचनाकारों से प्रभावित हैं। कारण यह है कि उस दौर में दक्खिनी में रचनाकर्म का आरंभ इन मुस्लिम रचनाकारों की स्वगत भाषिक शब्दावली के साथ ही हुआ था। जिस कारण मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में अरबी-फ़ारसी से प्रभावित शब्दावली भी प्रयुक्त हुई है। इसका प्रभाव नामदेव की भाषा पर भी लक्षित होता है – *काफिर, करीम, मिस्कीन, नमाज, तुर्क, मस्जिद, गफलत, औरत, लतीफ, गरीब, हजरत, मौला, दुनिया, सलाम, खसम, सुलतानु, बिसमिलि, बादिसाह, खुदाइ, काजी, मुलां, दोजकि, अल्लरव* इत्यादि। नामदेव की दक्खिनी रचनाओं में तत्सम शब्दावली इनकी भाषा का एक अभिन्न अंग है, जो दक्खिनी के शब्द-भंडार को समृद्ध करती है – *व्यापक, विचित्र, सहस्र, जल, प्रपंच, मिथ्या, भ्रम, पुरुष, जिह्वा, नैवेद्य, वाणी, कुसुम, कोकिल, तरुणी, विनोद, क्रोध, भक्ति, वसुधा, हिमालय, कष्ट, गगन, सद् गुरु, कृपा, श्रवण, नीर, उत्तम, जन्म, यातना, शरण, गिरीवर, तरुवर, वर्ण* इत्यादि। इनकी दक्खिनी रचनाओं में तद्भव शब्दावली की बहुलता है। यह दक्खिनी की मूल प्रवृत्ति है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नामदेव की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त तद्भव शब्द-पद वास्तव में दक्खिनी भाषा-शिल्प को सुगमता प्रदान करते हैं – *सुपन, पदारथ, भगति, भीख, भरम, पाथर, माटी, आकास, दुआर, काज, असतुति, मुकति, क्रिपालु, सावण, बरषा, त्रिसना, गिआन, निरमल, जोग, तीरथ, ब्रत, सुआ, अंम्रित, कापरु, सींगारा, कीरति, कलेस, जज्ञ, असनान, जोबन, मच्छी, देउल, बह्मन, सूद* इत्यादि। नामदेव की दक्खिनी रचनाओं की भाषिक शब्दावली के अतिरिक्त इन रचनाओं में प्रयुक्त क्रिया-पद दक्खिनी भाषा की संरचना में निहित विविधतागत विशेषताओं को इंगित करते हैं – *देखौं, काटौं, सीवौं, गावौं, हसत, कहन, सुनन, नाचै, बजावै, लेना, देना, आना, जाना* इत्यादि।

हम देखते हैं कि नामदेव की दक्खिनी रचनाओं का भाषा-शिल्प दक्खिनी के आरंभिक विकास के पहलुओं से सम्बद्ध दिखाई देता है। इस दक्खिनी की विशेषता यह है कि जिस खड़ीबोली के समतुल्य शौरसेनी प्राकृत और अपभ्रंश की आत्मजा के रूप में यह जानी जाती है, वह दक्खिनी में लेखन के आरंभ के समय तक केवल बोलचाल की भाषा थी। जबकि दक्षिण में यह रचनाकर्म की भाषा ही नहीं बल्कि शासन की निकटस्थ भाषा के रूप में भी स्थापित हो चुकी थी। दक्खिनी भाषा-शिल्प के संदर्भ में नामदेव का एक दक्खिनी पद दृष्टव्य है जिसमें नामदेव के दक्खिनी शिल्प विधान को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है –

*मन मेरो गज, जिह्वा मेरी काती। माप माप काटो जम की फाँसी॥*
*कहा करूँ जाती कहा करूँ पाती। राम को नाम जपो दिन राती॥*
*राग बिन रागो सिव बिन सीवो। राम नाम बिन कहीं न जीवो॥*
*सोने की सुई रूपे का धागा। नामा का चित्त हरे सूँ लागा॥*[207]

गोंदा की दक्खिनी रचनाओं के भाषा-शिल्प को समझने हेतु हम इनकी रचनात्मक शब्दावली की पड़ताल कर सकते हैं। इनकी दक्खिनी रचनाओं में मराठी का प्रभाव कम हो गया है। यानी गोंदा की भाषा उस समय उत्तर भारत में प्रचलित हिन्दी से साम्य रखती है। उनकी दक्खिनी रचना के इस अंश में उनकी ये भाषिक विशेषता दृष्टव्य है –

*पंडत करे जिकीर सुनो हिन्दू फकीर, हम लोकन के पीर पण्ढरपुर में रहते हैं*
*बादशाह करे गलत होते पीर आजमत, बुला लाव इस वक़्त करामात देखणें*
*पंडत करे तसलीमात हजरत भली नहीं बात, नामदेव कहे मात किसन, नाथ, कन्हैया*[208]

हम देखते हैं कि गोंदा की भाषा में वे विशेषताएँ विद्यमान हैं, जो आगे चलकर दक्खिनी में प्रकट हुईं।

207. वही, पृष्ठ – 41
208. वही, पृष्ठ – 46-47

गोंदा की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त सामाजिक शब्द-पद तत्कालीन परिवेश का संकेत देती है – *दर्जी, गुलाम, भगत, बम्मन, पण्डत, जिलिबदार, चोपदार, फकीर, बादशाह, मोंगल, कसाई, मुसलमान, हिंदू, चंडाल* इत्यादि । इनकी दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त दार्शनिक और आध्यात्मिक शब्दावली मार्मिक अनुभूतियों से सम्बद्ध है – *बभूत, वचनामृत, भगत, जगत, गंगा, मजल, कुरान, पीर, ज्ञान, ब्रह्मज्ञान* इत्यादि। गोंदा की दक्खिनी रचनाओं में अपने आराध्य के लिए प्रयुक्त संबोधनात्मक शब्द उनके मनोजगत की भावाभिव्यक्ति से जुड़े हुए हैं – *गजानन, विद्याभरी, बिठू, दीनानाथ, किसन, कन्हैया, प्रभुराय, गोपाललाल, बिठूराव* इत्यादि । इनकी दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त अरबी-फ़ारसी से प्रभावित शब्दावली भाषिक संरचना में लयबद्ध है – *गुलाम, बम्मन, मजल दर मजल, लश्कर, कुरान, तमाम, अर्जी, इत्तलास, जिकीर, वक़्त, करामात, तसलीमात, हजरत, अक्कल, मुलूख, बाछायत, तख़त, मादरबख़त, मौत, कुव्वत, मोंगल, दरबार, हुज़ूर, वसीला, हकीकत, अब्रू, लश्कर* इत्यादि । गोंदा की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त तत्सम शब्द-पद परिनिष्ठित भाषा का बोध कराते हैं – *गजानन, अंग, मुख, वचनामृत, दन्दुल, विघन, भूदेव, वाद्य, कन्हैया, रुक्मिणी, अकस्मात, ज्ञान, ब्रह्मज्ञान, रणधीर* इत्यादि । इनकी दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त तद्भव शब्द-पद बोलचाल की भाषा से सम्बद्ध हैं – *बभूत, जमदूत, भगत, बिनन्ती, काज, दिन, रात, किसन, हत्ती, घोड़े, मुलूख, बाछायत, पाँव* इत्यादि। इनकी रचनाओं में प्रयुक्त दक्खिनी क्रिया-पद से दक्खिनी के आचार व्यवहार का पता चलता है – *चलो, सुनो, आने, जाने, लिखी, देखणें, लगाव, बुलाव, बचाव, हाँसो* इत्यादि।

हम गोंदा की दक्खिनी रचनाओं के माध्यम से दक्खिनी के समृद्ध शब्द-भण्डार से परिचित होते हैं। इनकी दक्खिनी रचनाओं में भाषायी गठन को समझने हेतु गोंदा की दक्खिनी रचना का एक अंश दिया जा रहा है, जिसमें इनके भाषा-शिल्प को बेहतर ढंग से जाना सकता है –

*बादशहा करे जिकीर सच्च हिन्दू फकीर, ब्रह्मज्ञान में तीर रणधीर आये हैं*

*'गोंदा' लड़का अजान करे रात दिन ध्यान, हुए वो मेहरबान दिया ज्ञान बालक कू*[209]

एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं में भाषा-शिल्प को समझने हेतु इनकी रचनात्मक शब्दावली की चर्चा आवश्यक है। इनकी दक्खिनी पर सूफ़ी-संत लोगों का प्रभाव है। एकनाथ की दक्खिनी शब्दावली मुस्लिम धर्म-दर्शन से भी सम्बद्ध है, जिसका प्रभाव इनके भाषा-शिल्प में विद्यमान है। इस संदर्भ में इनका एक दक्खिनी पद दृष्टव्य है –

*हज़रत मौला मौला, सब दुनया पालन वाला।*
*सब घटमो सांई बिराजे, करत हय बोल बाला।*
*गरीब नवाजे मैं गरीब तोरा, तेरे चरन कु रतवाला।*
*अपना साती समज के लेना, सलील वोही अल्ला।*
*जीन रूप से है जगत पसारा, वोही सल्लाह अल्ला।*
*एका जनार्दनी निजबद अल्ला, असल वोही चिर पर अल्ला।*[210]

एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं के भाषा-शिल्प के संदर्भ में हमें इनकी प्राप्त दक्खिनी रचनाओं की शब्दावली पर विचार करना चाहिए।

एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त सामाजिक शब्द-पद लोकमत रीति से सम्बद्ध हैं – *जोगी, सेवक, भिकारी, चाकर, तुर्का, बह्मण, यवन, साहु, दरजी, माली, कसाई, कुंभार, सोनार, चंभार, भिल्लनी* इत्यादि। इनकी दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त दार्शनिक और आध्यात्मिक शब्दावली हिन्दू-मुस्लिम साझा संस्कृति के बोधगम्य उदाहरण हैं – *मौला, अल्ला, जोगी, जोगीना, भक्ति, निर्गुण, परवरदिगार, माया, अनुहद, पीर, पैगंबर, गारुडी, सन्यासी, विवेक, जीव, तप, विद्या, ज्ञानी, पिंडा, ब्रह्मांडा, अलख, अहंनाद, समाधी, महाकारण, अजरामरपद, वैराग्य, नाथपंथ, मोक्ष, निराकार, सोहं* इत्यादि। एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं में आराध्य के लिए प्रयुक्त संबोधनात्मक शब्द तत्कालीन

209. वही, पृष्ठ – 50
210. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 288

आस्थाओं को प्रदीप्त करते हैं – *अल्ला, परवरदिगार, गारुडी, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, कन्हैया, राम, जनार्दन* इत्यादि। इनकी दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त अरबी-फ़ारसी से प्रभावित शब्दावली हमारी साझा संस्कृति की देन हैं – *हज़रत, मौला, मगरूरी, परवरदिगार, वस्ताद, तमाशा, सालन, आलम, अव्वल, पैगंबर, दरम्याने, हिकमत, इन्साफ, हुशियार, तुर्का, हराम, कुफर* इत्यादि। एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त तत्सम शब्द-पद विषय बोध को चमत्कृत करते हैं – *कृपा, दधि, भक्ति, तुरंग, निर्गुण, मुद्रा, निद्रा, दृष्टि, प्रपंच, ब्रह्माण्ड, विद्या, क्रोध, विवेक, मिथ्या, जीव, गगन, द्वार, कोटि, संसार, अविद्या, नष्ट, भ्रष्ट, विवाद, संवाद, चंद्र, कर्म, शून्य, तत्त्व, लिंग, अंकुश, वैराग्य, सन्यास, शंख, शास्त्र, अवतार, प्रयाग, द्वारका, वेद, सरस्वती, वृंदा, विश्वामित्र* इत्यादि। इनकी दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त तद्भव शब्द-पद लोक जीवन की अभिव्यक्तियाँ हैं – *दुनया, जोगी, गोरस, मलीदा, घड़ा, भिकारी, वस्ताद, मंतर, खबूतर, गाँव, रात, घर, नैन, अलख, जशोदा, बिनती, भात, रोटी, गप, निरगुण, शेटेसावकार, तीरथ, धरम, आग, पहाड़, शाम* इत्यादि। इनकी रचनाओं में प्रयुक्त दक्खिनी क्रिया-पद दैनिक कार्यबोध की ओर संकेत करते हैं – *रहना, उड़ावै, चढ़ावै, चलावे, खेलना, बोलूँ, खोलूँ, गाना, खाना, करना, बोलना, देखना, धरता, खाता, करता, बजता, पीता, फिरता, पढ़ता, बोलता, सोता, जगता, मंगता, भुलाया, मरवाया, डुबाया, लागी, भागी* इत्यादि।

हम एकनाथ की भाषिक शब्दावली के माध्यम से दक्खिनी के समृद्ध शब्द-भण्डार से परिचित होते हैं। इनकी दक्खिनी रचनाओं का एक नमूना दिया जा रहा है जो इनके भाषा-शिल्प को समझने में सहायक सिद्ध होगी –

*आदि पुरुष निर्गुण निराधार की याद कर, मेरे गुरु परवरदिगार की याद कर।*
*जीने माया अजब बनाई, उस वस्ताद की याद कर।*
*गैबी खजान हमने दिया, उस साहब की याद कर।*
*संत महन्त की याद कर, गुणी गुणवंत की याद कर।*

*श्री भगवंत की याद कर ।*[211]

तुकाराम का दक्खिनी भाषा-शिल्प उत्तरकालीन दक्खिनी की अभिव्यक्ति है इसलिए इनकी दक्खिनी भाषा का रूप नामदेव, गोंदा और एकनाथ से अधिक परिष्कृत है। इनके भाषा-शिल्प को जाँचने हेतु हमें इनकी दक्खिनी रचनाओं की शब्दावली को परखना चाहिए। इस संदर्भ में तुकाराम का एक दक्खिनी पद दृष्टव्य है –

*क्या गाऊँ कोई सुनने वाला, देखें तो सब जग ही भूला ।*
*खेलों अपने राम ही सात, जैसी वसी कर हो, मात !*
*कहाँ से लाऊँ मधुर बानी, रीझे ऐसी लोक-बिरानी ।*
*गिरिधर लाल तो भाव का भूका, राग कला नहिं जानत 'तुका' ।*[212]

तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं के भाषा-शिल्प के संदर्भ में इनकी दक्खिनी रचनाओं की शब्दावली की पड़ताल करेंगे, जिससे इनके भाषिक शिल्प विधान को समझने में हमें सहायता मिलेगी।

तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त सामाजिक शब्द-पद तत्कालीन समाज दशा की ओर करते हैं – *सखी, दरवेस, कुटुंब, गौलनी, हिंदु, धेड, चँभार, बन्धु, गोवलिया, सज्जन, दुर्जन* इत्यादि। इनकी दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त दार्शनिक और आध्यात्मिक शब्दावली भक्तिमार्ग के आचरण से सम्बद्ध है – *लोक-बिरानी, तुलसी माला, गुण-निर्गुण, मंत्र-तंत्र, माया, भजन, अंततारे, रामरस* इत्यादि। तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में अपने आराध्य के लिए प्रयुक्त संबोधनात्मक शब्द-पद मर्यादित धार्मिक भावना के अनुगामी हैं – *हरि, लाल, सखी, प्रभु, अल्ला, बाबा, राम, गिरिधर, नारायन, कन्हया, गोपाला, ठाकुर, दीनदयाला, रघुराज* इत्यादि। इनकी दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त अरबी-फ़ारसी से प्रभावित शब्दावली भाषिक दृष्टिकोण से मिश्रित अवबोध प्रदान करते हैं – *जिहिरा, जिकिर, अल्ला, दरवेस,*

211. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 59
212. वही, पृष्ठ – 97

*मुकाम, पैजार, खाक, काफर* इत्यादि। तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त तत्सम शब्द-पद समृद्ध भाषा के घटक हैं – *कुटुम्ब, मधुर, गिरिधर, राग, कला, गुण, निर्गुण, मंत्र, तंत्र, आनंद, चित्त, भूमि, धेनु, मेघ, कंचन, धातु, रघुराज, सखि, क्रिया, संताप, घृत, जिह्वा, नित, रावण, विभीषण, नख, वैकुंठ, स्तंभ, प्रह्लाद, द्वार, रज, मुख, दुर्जन, अंग* इत्यादि। इनकी दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त तद्भव शब्द-पद बृहत् दक्खिनी शब्द-भण्डार की ओर संकेत करते हैं – *बस्तर, भेस, दरवेस, ईछा, बानी, भूका, बलियारी, गौलनी, कुमर, कन्हया, लकरी, चँभार, बिरखा, चंदा, सुरज, कमली, लाज, भूक, जुग, मोल, पन्हियाँ, हिरदा, पानी* इत्यादि। इनकी रचनाओं में प्रयुक्त दक्खिनी क्रिया-पद द्वारा तत्कालीन जीवन का सजीव बोध होता है – *पाऊँ, जाऊँ, गाऊँ, भागूँ, जानूँ, मानूँ, हाँसत, खेलत, चालत, राखे, चाखे, पेनाये, बनाये, पीवे, खावे* इत्यादि।

हम तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं के माध्यम से दक्खिनी के समृद्ध हो चुके शब्द-भण्डार से परिचित होते हैं। इनकी दक्खिनी का एक पद दिया जा रहा है, जिसमें इनके भाषा-शिल्प विधान को बेहतर ढंग से परखा जा सकता है –

*हरि बिन रहिया न जाए जिहिरा, कब की थाड़ी देखे राहा।*
*क्या मेरे लाल कवन चुकी भई, क्या मोहि पासिती बेर लगाई।*
*कोई सखी हरि जावे बुलवान, बारहि डारूँ उस पर ये तन।*
*तुका प्रभु कब देख पाऊँ, पासी आऊँ फेर न जाऊँ।*[213]

**लय, तुक और गेय का संगीतात्मक विधान**

लय, तुक और गेय के संगीतात्मक विधान के संदर्भ में संत काव्य रचनाएँ महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान करती हैं। मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ इस रूप में विश्लेषण के योग्य हैं। बहरहाल, इस तथ्य

213. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 164

पर विचार करने से पूर्व हमें रामचन्द्र शुक्ल के उस मत को भी ध्यान में रखना चाहिए जिसमें वे कहते हैं कि "नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढ़ती है।"[214] वास्तव में यह कथन किसी भी काल परिवेश की काव्य रचनाओं के लिए प्रासंगिक है। संपूर्ण संत काव्य की यह विशेषता है कि वह लय, तुक में गेय होने के साथ संगीतबद्ध रचना के रूप में मान्य ठहरती है। मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं के विषय में भी यह स्वीकारोक्ति स्वाभाविक है कि छंद योजना में अधिक सुगढ़ न होते हुए भी ये रचनाएँ लय, तुक और गेय का संगीतात्मक विधान बनाए रखती हैं। यहीं रामचन्द्र शुक्ल की यह स्थापना महत्त्वपूर्ण जान पड़ती है कि "जो अन्त्यानुप्रास को फालतू समझते हैं, वे छन्द को पकड़े रहते हैं; जो छन्द को भी फालतू समझते हैं, वे लय में लीन होने का प्रयास करते हैं।"[215] यह बात इन्होंने 'नाद सौन्दर्य' के संदर्भ में ही कही है।

हम मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में लय और तुक की प्रधानता पाते हैं, यह प्रभाव नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में अधिकांशत: अन्त्यानुप्रास के रूप में घटित होता है। जिससे इन मराठी संतों के दक्खिनी शिल्प विधान में गति प्रवाह उत्पन्न हो जाता है। कहीं-कहीं तुकांत शब्दों के प्रयोग से रचना में लय चमत्कृत हो उठा है। इस संदर्भ में इन संतों की दक्खिनी रचनाओं के कुछ तुकांत पदांश देखने योग्य हैं, जो इन दक्खिनी रचनाओं को संगीतबद्धता की कसौटी पर परखने में सहायक होंगे – नामदेव : *"मैं बऊरी मेरा रामु भतारु ॥ रचि रचि ताकऊ करऊ सिंगारू ॥ भले निंदऊ भले निंदऊ लोगु ॥ तनु मनु राम मिआरे जोगु ॥"*[216] *"आपन देउ देहुरा आपन आप लगावै पूजा। जल ते तरंग तरंग ते है जलु कहन सुनन कऊ दूजा ॥ आपहि गावै आपहि नाचे आप बजावै तूरा। कहत नामदेऊ तूं मेरे ठाकुर जनु ऊरा तू पूरा ॥"*[217] इत्यादि। गोंदा : *"ये तो पापी चंडाल इन्नें बुरा किया हाल, मेरे अब्रू का काल गोपाललाल जल्दी आव, नामा रोवे झुरझूर बहे अश्रून का पूर, बिठू पसीने*

214. रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि ( पहला भाग ), लोकभारती प्रकाशन, आठवाँ संस्करण – 2009 ई., पृष्ठ – 104
215. वही, पृष्ठ – 104
216. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 255
217. वही, पृष्ठ – 261

*में चूर बिठू पंढरपुर में हुवे हैं"*[218] *"बादशहा करे जिकीर सच्च हिन्दू फकीर, ब्रह्मज्ञान में तीर रणधीर आये हैं, 'गोंदा' लड़का अजान करे रात दिन ध्यान, हुए वो मेहरबान दिया ज्ञान बालक कू"*[219] इत्यादि। एकनाथ : *"आदि पुरुष निर्गुण निराधार की याद कर, मेरे गुरु परवरदिगार की याद कर। जीने माया अजब बनाई, उस वस्ताद की याद कर।"*[220] *"नाहं जोगी नाहं भोगी नाहं जोशी सन्यासी, नाहं कर्मी नाहं धर्मी उदासीना घरबासी। बाबा अचिन्त्य रे ब्रह्मीं स्फुर सो माया, नाम नहीं ना रूप देखा सो मैं आम्हारी काया"*[221] इत्यादि। तुकाराम : *"मंत्र तंत्र नहिं मानत साखी, प्रेम भाव नहिं अंतर राखी। राम कहे त्याके पग हौं लागूँ, देखत कपट अभिमान दूर भागूँ।"*[222] *"राम भजन सब सार मिठाई, हरि संताप जनम दुख राई। दूध भात घृत सकर पारे, हरते भूक नहिं अंततारे।"*[223] इत्यादि।

इस प्रकार हम नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम के दक्खिनी काव्य पदों के अध्ययन से पाठ में निहित लय और तुकांत शिल्प विधान की बुनावट से गुज़रते हैं।

मराठी संतों ने दक्खिनी रचनाएँ आमतौर पर काव्य-पद शिल्प में लिखी हैं। यही कारण है कि इन्हें संगीतबद्ध किया जा सकता है। इनमें छन्द की अपेक्षा अन्त्यानुप्रास का निर्वाह अधिक है, जिससे काव्य पदों में लय और तुक का प्रवाह मिलता है। उदाहरणार्थ यही काव्य-पद स्वरूप नामदेव की रचनाओं को गेय और संगीतात्मक विधान में बाँधते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप हम पाते हैं कि नामदेव की दक्खिनी रचनाएँ राग आसावरी, गुजरी, टोडी, बिलावलु, रामकली, सारंग, मलार, प्रभाती और भैरउ जैसे प्रचलित रागों पर संगीतबद्ध किए जा सकते हैं। गेय और संगीतात्मक विधान के साथ रागों पर खरा

218. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 48
219. वही, पृष्ठ – 50
220. वही, पृष्ठ – 59
221. वही, पृष्ठ – 66
222. वही, पृष्ठ – 98
223. वही, पृष्ठ – 105

उतरने वाली रचनाओं के कुछ उदाहरण इस संदर्भ में नामदेव की दक्खिनी रचनाओं से यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं –

( राग – टोडी )

*कोई बोलै नीरवा कोई बोलै दूरि । जल की माछली चरै खजूरि ॥*
*कांइ रे बकबादु लाइउ । जिन हरि पाइउ तिनहि छपाइउ ॥*
*पंडित होइकै बेदु बखानै । मूरखु नामदेऊ रामहि जानै ॥*[224]

( राग – बिलावलु )

*सफल जनमु मोकउ गुरु कीना । दुख बिसारि सुख अंतरि लीना ॥*
*गिआन अंजनु मोकउ गुरु दीना । राम नाम बिनु जीवनु मन हीना ॥*
*नामदेइ सिमरनु करि जानां । जगजीवन सिउ जीऊ समानां ॥*[225]

( राग – प्रभाती )

*मन की बिरथा मनु ही जानै कै बूझल आगै कहीए ।*
*अंतरजामी रामु रवांई मै उरु कैसे चाहीऐ ॥*
*बोधिअले गोपाल गुसाई ॥ मेरा प्रभु रहिआ सरबे ठायी ॥*
*माने हाटु माने पाटु मानै है पसारी ॥*
*मानै बासै नाना भेदी भरमतु है संसारी ॥*
*गुरूकै सबदि एहु मनुराता दुबिधा सहजि समाणी ।*
*सभो हुकमु हुकमु है आपै निरमऊ समतु बिचारी ॥*
*जो जन जानि भजहि पुरखोतमु ताची अबिगतु बाणी ॥*
*नामा कहै जगजीवनु पाइआ हिरदै अलख बिडाणी ॥*[226]

हम देखते हैं कि नामदेव की दक्खिनी रचनाएँ गेय और संगीतात्मक विधान के पूरक हैं । यही शिल्पगत विशेषता नामदेव सहित अन्य मराठी संतों गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं को भी प्रभावी बनाती है ।

---

224. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 247
225. वही, पृष्ठ – 248
226. वही, पृष्ठ – 263

**मिथक प्रयोग**

मध्यकालीन काव्य में मिथकों का प्रयोग कथानक रूढ़ियों के रूप में हुआ है। सूफ़ी संतों ने कथानक रूढ़ियों के माध्यम से अपनी रचनाओं की अंतर्वस्तु का प्रसार किया है। दक्खिनी साहित्य में कथानक रूढ़ियों का प्रयोग कहीं कहीं मिलता है, जो मिथक रूप में ही हुआ है। दरअसल, काव्य-शिल्प में मिथकों के प्रयोग के माध्यम से किसी भी समय और समाज के अंतर्विरोध तथा संवेदना की अभिव्यक्ति संभव हो जाती है। यही कारण है कि मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में भी इसके प्रभाव को मध्यकालीन काव्य शिल्प की अभिव्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है, इस दृष्टि से हम इस पर आगे विचार करेंगे।

मराठी संत नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं के शिल्प में मिथकों का प्रयोग सांसारिक या पारलौकिक अनुभूतियों को जागृत करने के लिए हुआ है। क्रमशः नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त कुछ मिथक इस प्रकार हैं – नामदेव : *ब्रह्म की लीला, आठ पहर, चकवी, मानसरोवर हंसुला, नाद भ्रमे, मिरगाए प्रान, संसारु समुंदे, विषिआ वन, बत्तीस लषना, लीला सिंध, मेरु सुमेरु, भवसागर, सिंबलु सुआ, बैकुण्ठ, लख चौर्यासी का फेरा* इत्यादि। नामदेव की दक्खिनी रचनाओं में यह पद मिथक प्रयोग की दृष्टि से उल्लेखनीय है –

*जो कोई वसुधा दान दे आवे। पूर्ण जज्ञ करे करावे।*
*तीरथ बरथ करे असनान। नहिं नहिं हरि-नाम समान॥*
*जो कोई जावे हिमालय गले। काशी करवत ले कर मरे।*
*दसवें द्वारे काढे प्राण। नहिं नहिं हरि-नाम समान॥*
*काय-कष्ट दे कलेवर जीवे। ना कुच खावे ना कुच पीवे।*
*गगन मंडल मों जोग ध्यान। नहिं नहिं हरि-नाम समान।*
*अगली-पिछली बात बनावे। नेम-धरम में मन छुपावे।*

*चारों बेद पढ़े पुराण । नहिं नहिं हरि-नाम समान ॥*
*सद् गुरु की जद कृपा भई । प्रेम भगद हरदे धर लई ।*
*कहे 'नामदेव' भज भगवान । नहिं नहिं हरि-नाम समान ॥*[227]

गोंदा की दक्खिनी रचना में कुछ चमत्कारों के साथ संवादात्मक कथ्य तो अभिव्यक्त हुआ है लेकिन उसमें मिथकों का प्रयोग नहीं किया गया । एकनाथ : *जपका जोगी, तप का जोगीना, आदि पुरुष, दसवे द्वार, अलख पुरूष, ब्रह्मासनथी, नाथपंथ की मुद्रा, बैकुंठ धाम* इत्यादि । एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं में यह पद मिथक प्रयोग की दृष्टि से उल्लेखनीय है –

*हम तो जोगी रे बाबा संजोगी ।*
*बहुत दीन के पुराने,*
*बिरला बूझे कोई लाखों में, गुरु साहेब जाने ॥*
*जपका जोगी, तप का जोगीना, जोगी जुग जुग जीवे,*
*हात मो प्याला लिया प्रेम का भर भर पीवे ॥*
*जोगी कु धुंडत जोगया कीणे लखे नहिं पाया,*
*एका जनार्दन कृपा सो जोगी, पाकर ही लाया ॥*[228]

तुकाराम की दक्खिनी रचना में मिथकों का प्रयोग नहीं के बराबर है, किन्तु उसके शिल्प में प्रयुक्त पौराणिक कथानकों में मिथक कथा समाहित है । तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में यह पद मिथक प्रयोग ( मिथक कथा ) की दृष्टि से उल्लेखनीय है –

*हम दास तीन्ह के सुना हो लोकाँ ! रावण मार विभीषण दिई लंका ।*
*गोवरधन नख पर गोकुल राखा, बर्सन लागा जब मेहूँ पत्थर का ।*
*वैकुंठ नायक काल कौंसासुर का, दैत डुबाय सब मँगाय गोपिका ।*
*स्तंभ फोड़ पेट चिरीया कश्यप का, प्रह्लाद के लिये कहे भाई 'तुका' याका ।*[229]

---

227. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 16-17
228. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 292
229. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 106

**प्रतीक योजना**

ऐसे शब्द-पद अथवा शब्द-चिह्न जिनके माध्यम से अन्य वस्तु का बोध होता है प्रतीक कहलाते हैं। संत साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग भावबोध के भिन्न-भिन्न स्तरों पर मिलता है। मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में प्रतीक योजना का बोधगम्य प्रभाव शिल्प विधान पर भी दिखाई देता है। अतः नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में शिल्प पक्ष के साथ प्रतीक योजना का निर्वाह इस संदर्भ में प्रयुक्त भावबोध के अर्थों के साथ अवश्य ही जानने योग्य है। इन संतों की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त कुछ प्रतीक दिए जा रहे हैं जो क्रमशः अपने अर्थों की ओर भी संकेत करते हैं – नामदेव : *बऊरी ~ नामदेव, भतारु ~ राम, हाट ~ संसार, जहाज ~ ईश का नाम, भवसागर ~ संसार की बाधा, संसार ~ मायाजाल, सुई ~ मन, धागा ~ तन* इत्यादि। नामदेव की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त प्रतीक योजना के संदर्भ में उनका ये दक्खिनी पद इस ओर पर्याप्त संकेत देता है –

*मन मेरो गज, जिह्वा मेरी काती। माप माप काटो जम की फाँसी॥*
*कहा करूँ जाती कहा करूँ पाती। राम को नाम जपो दिन राती॥*
*राग बिन रागो सिव सीवो। राम नाम बिन कहीं न जीवो॥*
*सोने की सुई रूपे का धागा। नामा का चित्त हरे सूँ लागा॥*[230]

गोंदा की दक्खिनी रचना में प्रतीक योजना का कोई विधान नहीं मिलता। एकनाथ : *अचला ~ भक्ति, गरगा ~ अहंकार, बाँधा ~ जोग-जुगत, बिच्छू ~ क्रोध, साप ~ काम-विषय, नागन ~ ममता, शिक्का ~ विवेक, झोली ~ माया, सैली ~ निरगुण, माला ~ नाम, टोपी ~ समकी, कफनी ~ दमकी, बभूत ~ त्रिगुन, रोटी ~ भक्ति, सालन ~ भाव* इत्यादि। एकनाथ की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त प्रतीक योजना के संदर्भ में उनका एक पद उदाहरणार्थ प्रस्तुत है –

230. वही, पृष्ठ – 41

*परधन फेंक दुजी औरत फेंक, न फेंके सो चांडाल है।*
*दंभमान फेंक मोपन फेंक, न फेंके सो नकटा आंधा है।*
*साही शास्त्र अठरा पुराण, चारों बेद पढ़ता है।*
*माँ बाप तो कासी तीरथ, उसकूँ गाली देता है।*
*साधुसंत घरकु आये, उसकूँ तेड़ा बोलता है।*
*दीवाना उनका बाप यारो, हाथ जोड़कर रहेता है।*
*नाम अल्ला कथा सुन्ने की, वा मुरगी का सोता है।*
*काम का कुत्ता कसबीन धरम, सारी रात दीन जगता है।*
*इस दुनिया में आया बंदे, अल्ला नाम का सौदा है।*
*इस नगरी में सेटे सावकार, बड़े मतलबी रहते हैं।*
*नाम की जोड़ी कारले यारो, चोयान्यांशी बेड़ी तुटती है।*
*तेरे नगरी में नानक आया, पैसा टक्का कूच मंगता नहीं है।*
*भक्ती रोटी भाव का सालन, देना मेरे कू सच्चा है।*
*एक जनार्दनी शाही हमारा, नानक उनका बंदा है।*
*मोक्ष निशानी लिया हात मो, बैकुंठ धाम पढ़ता है।*[231]

तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में प्रतीक योजना का कोई विधान नहीं मिलता।

## बिंब विधान

बिंब एक प्रकार के भावगर्भित शब्द-चित्र हैं, जिसके मूल में भावगत प्रेरणा सक्रिय रहती है। कवियों द्वारा बिंब विधान के प्रयोग से काव्य दृश्यात्मक हो उठता है। इस प्रकार यह काव्य को बोधगम्य बनाता है। मराठी संत नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं के शिल्प में प्रयुक्त कुछ बिंब इस प्रकार आए हैं – नामदेव : *"जल, तरंग और फेन, बुदबुदा जल ते भिन्न न कोई।"*[232]

231. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 294
232. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 42

*"एकै पाथर कीजै भाऊ । दूजै पाथर कीजै पाऊ ॥"*[233] *"पांचकोस पर गऊ चरावत चीतु सु बछरा राखीअले ॥"*[234] *"पावहु बेड़ी हाथहु ताल । नामा गावै गुन गोपाल ॥"*[235] इत्यादि । गोंदा : *"विद्याभरी दन्दुल पेट उस पर साँप की लपेट"*[236] *"नामा रोवे झुरझूर बहे अश्रून का पूर"*[237] इत्यादि । एकनाथ : *"मैं दधि वेचन चलि मथुरा । तुम केंव थारे नंद जी के छोरा ॥"*[238] *"कोई दिन तुरंग ऊपर चढ़ावे, कोई दिन पाव से खासा चलावे ॥"*[239] इत्यादि । तुकाराम : *"प्रेम रसड़ी बाँधी गले, खैंचे चले उधर चले ।"*[240] *"लाल कमली वोढ़े पेनाये, बेसु हरि थे कैसे बनाये ।"*[241] इत्यादि । हम देखते हैं कि बिंब विधान के इन प्रयोगों से इन संतों के शिल्प विधान की बोधगम्यता बढ़ने के साथ भावों में स्पष्टता आई है ।

**छंद योजना**

छंद शिल्प विधान का रूप है । मराठी संतों ने अपनी मातृभाषा मराठी में अपने भजनों को वाणी देने हेतु एक छंद का ही आविष्कार कर लिया था, जो 'अभंग' ( जिसको भंग न किया जा सके ) नाम से जाना जाता है । किन्तु दक्खिनी इनके लिए नयी-नयी थी, जिसमें कहन शैली के रूप में छंदों का अभी विकास नहीं हुआ था । इस प्रकार मूलतः मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में छंद प्रयोग का अभाव मिलता है । बहरहाल, इनमें जो छंदबद्ध रचना मालूम होती है वह वास्तव में वार्णिक और मात्रिक दोनों दृष्टियों से अशुद्ध दिखाई देती है । नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम ने अपनी दक्खिनी रचनाएँ काव्य-पद के रूप में कही ज़रूर हैं, लेकिन उनमें छंदों का कोई औचित्य नहीं ठहरता । क्योंकि हिन्दी छंदों

233. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 243
234. वही, पृष्ठ – 252
235. वही, पृष्ठ – 258
236. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 45
237. वही, पृष्ठ – 48
238. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 279
239. वही, पृष्ठ – 296
240. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 100
223. वही, पृष्ठ – 103

पर इनका वैसा अधिकार नहीं था, जैसा मराठी छंदों पर था। इस संदर्भ में नामदेव का एक दक्खिनी पद देखा जा सकता है, जो गीत शैली के छंद का उदाहरण है –

*सभै घट रामु बोलै रामा बोलै राम बिना को बोलै रे।*
*एकल माटी कुंजर चीटी भाजन हैं बहुनाना रे॥*
*असथावर जंगम कीट पतंगम घटि घटि रामु समाना रे॥*
*एकल चिंता राखु अनंता अउर तजहु सभ आसा रे॥*
*प्रणवै नामा भए निहकामा को ठाकुर को दासा रे॥*[242]

अपनी दक्खिनी रचनाओं के शिल्प विधान में जहाँ गोंदा ने संवाद शैली का प्रयोग किया है, वहीं काव्य-पद के रूप में एकनाथ ने दक्खिनी शैली में 'भारुड़' लिखे जो एक प्रकार के लोकगीत हैं। इस संदर्भ में एकनाथ का एक दक्खिनी 'भारुड़' उदाहरण के रूप दृष्टव्य है –

*हुशियार बंदे हुशियार, तेरा तन ख़बरदार।*
*तुझे खिलावन एक नार, बना देव सतरावी घर पाई है।*
*बड़े-बड़े साधुसंत, उनसे कर ले एकांत।*
*वतादेव सिद्धान्त, आदि अंत उनोंका।*
*बड़ी तो सबसे बड़ी, जाड़ी तो धरतरी से जाड़ी।*
*एकबीस खन्न की माड़ी, गगन बीच में खड़ी हैं।*
*दसवे द्वार बुरों का, देव ले दिदार उनोंका, नैन दीन लगावे।*
*ब्रह्मा विष्णु बड़े देव, अजब गुरू ग्यानी महादेव।*
*पहिए उनोंकी ठेव, बठैके जब झुलाई है।*
*अलख पुरूष को धुनि, तुर्या चेत रही उन्मनी।*
*नहीं आदि अंत पुराणीं, पत्री महाकारण रूप है।*
*अहंनाद निःशब्दमों, सोस लगाइए चष्ममों।*
*चुनकहै मसूर मों, झकझक झकाकत है।*

242. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 254

*लखलखाट हिरेकी खान, चकचकाट कोटि भान।*
*निश्दिन करता ना ध्यान, ग्यान बहोत आएगे।*
*दिल रिझे तो कर ले धंदा, भटगोपाल उनोंका बंदा।*
*चूप सोनेसो बताई है।*[243]

इसके अतिरिक्त तुकाराम ने 'दोहरे' यानी दोहे कहे हैं, जो छंद की दृष्टि से हिन्दी-दोहों से अधिक दूर नहीं हैं, एक उदाहरण देखिए –

*लोभी के चित धन बैठे कामिनी चित काम।*
*माता के चित पूत बैठे 'तुका' के मन राम॥*[244]

कहीं-कहीं इन्होंने चौपाई छंद का भी प्रयोग किया है, एक उदाहरण दृष्टव्य है –

*मंत्र तंत्र नहिं मानत साखी, प्रेम भाव नहिं अंतर राखी।*
*राम कहे त्याके पग हौं लागूँ, देखत कपट अभिमान दूर भागूँ।*
*अधिक-जाति कुल-हीन नहिं जानूँ, जाने नारायन सो प्रानी मानूँ।*
*कहे 'तुका' जीव तन डारूँ वारी, राम उपासिहूँ बलिहारी।*[245]

**रस**

रस का संबंध आस्वाद से है। संत साहित्य का मूल आस्वाद भक्ति भाव में है। रूपगोस्वामी ने भक्ति को रस माना है। इसे रति का ही विशिष्ट रूप माना गया है। मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में भी मूल रूप से भक्ति भाव का ही आस्वाद मिलता है। इसके अतिरिक्त हमें वात्सल्य, शांत, करुण और अद्भुत भावों का भी आस्वाद कहीं-कहीं मिल जाता है। रस की दृष्टि से नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में यही आस्वाद भाव विद्यमान हैं। उदाहरणार्थ नामदेव की दक्खिनी

243. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, वही, पृष्ठ – 178
244. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 107
245. वही, पृष्ठ – 98

रचनाओं में रसास्वाद के कुछ अंश देखने योग्य हैं – वात्सल्य आस्वाद : *"जैसी प्रीत बालक अर माता। तैसी हर सेती मन राता॥"*[246] शांत आस्वाद : *"जौ राजु देहि त कवन बडाई। जौ भीख मंगावहि त किआ घटि जाई॥"*[247] अद्भुत आस्वाद : *"कोई बोलै नीरवा कोई बोलै दूरि। जल की माछली चरै खजूरि॥"*[248] करुण आस्वाद : *"पानीआ बिनु मीनु तलफै। ऐसे रामानामा बिनु बापुरो नामा॥"*[249] भक्ति आस्वाद : *"सद् गुरु की जद कृपा भई। प्रेम भगद हरदे धर लई। कहे 'नामदेव' भज भगवान। नहिं नहिं हरि-नाम समान॥"*[250] इत्यादि। हम देखते हैं कि रसास्वाद की दृष्टि से मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं से भी सहृदय का साधारणीकरण हो उठता है।

**अलंकार**

अलंकार काव्य के बाह्य शोभाकारक धर्म हैं। सामान्यतः ये शब्दालंकार और अर्थालंकार के रूप में काव्य की शोभा बढ़ाते हैं। जहाँ काव्य में विशिष्ट शब्द-प्रयोग से सौंदर्य आ जाता है वहाँ शब्दालंकार और जहाँ काव्य में विशिष्ट अर्थ-प्रयोग से सौंदर्य आ जाता है वहाँ अर्थालंकार होता है। मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में अलंकारों का प्रभाव नगण्य है, फिर भी शब्दालंकार और अर्थालंकार के कुछ उदाहरण मिल जाते हैं। जिसका सामान्य रूप से प्रभाव नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं पर दिखाई देता है। उदाहरणार्थ नामदेव की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त शब्दालंकार के कुछ उदाहरण – अनुप्रास अलंकार : *भगति-भाव सूं सीवनि सीवौं, थान थनंतरि, जो जन जानि, काहे कउ कीजै, साधिक सिध सगल, रसना राम रसाइतु, बादल बिनु बरषा, परधन परदारा परहरी* इत्यादि। नामदेव की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त अर्थालंकार के कुछ उदाहरण – उपमा अलंकार : *"ऐसो*

246. वही, पृष्ठ – 44
247. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 243
248. वही, पृष्ठ – 247
249. वही, पृष्ठ – 250
250. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 17

*राम राम राय अन्तर जानी । जैसे दरपन माह बदन परछाँयी ॥ बसे घटाघट लिपे न झिपे । बन्धन मुक्त जात न दिसे ॥ पानी माहे देख मुख जैसा । नामे को स्वामी विट्ठल ऐसा ॥"*[251] रूपक अलंकार : "*लोभ लहरि अति नीझर बाजै । काइआ डूबै केसवा ॥ संसारु समुंदे तारि गोबिंदे । तारिलै बाप बीठुला ॥ अनिल बेड़ा हऊ खेवि न साकऊ । तेरा पारु न पाइआ बीठुला ॥ होहु दइआलु सतिगुरु मेलि तू मोकऊ पारि उतारे केसवा ॥ नामा कहै हऊ तरि भी न जानऊ । मोकऊ बाह देहि बाह देहि बीठुला ॥"*[252] दृष्टांत अलंकार : "*जिऊ मीना हेरै पसुआरा । सोना गडते हिरै सुनारा ॥ जिऊ बिखई हेरै पर नारी । कउड़ा डारत हिरै जुआरी ॥ जह जह देखऊ तह तह रामा । हरिके चरन नित धिआवै नामा ॥"*[253] विभावना अलंकार : "*अणमडिआ मंदलु बाजै । विनुसावन घनहरु गाजै । बादल बिनु बरखा होई । जउ ततु बिचारे कोई ॥"*[254] उदाहरण अलंकार : "*जैसे मीनु पानी महि रहै ॥ काल जाल की सुधि नहीं लहै ॥"*[255] इत्यादि । हम देखते हैं कि "सचमुच नामदेव के अलंकार अनुभूति को रूप देने के लिए हैं – हृदयंगम कराने के लिए हैं; इनमें कहीं चमत्कारिता नहीं है ।"[256] और नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम ने अपनी रचनाओं में अलंकारों का चयन सामान्य जन जीवन के प्रभावों से किया है । इसलिए इनके दक्खिनी काव्य-पदों में अलंकार बोध अधिक आकर्षक बन पड़ा है ।

**शब्द शक्ति**

जिस शक्ति के द्वारा शब्द पर अर्थगत प्रभाव पड़ता है उसे शब्द शक्ति कहते हैं । शब्द शक्तियाँ तीन हैं – अभिधा, लक्षणा और व्यंजना । "ये तीन शब्द-शक्तियाँ जिन शब्दों से अर्थ की अभिव्यक्ति

---

251. वही, पृष्ठ – 29
252. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 260
253. वही, पृष्ठ – 249
254. वही, पृष्ठ – 244
255. वही, पृष्ठ – 261
256. शं. के. आडकर, हिन्दी निर्गुण-काव्य का प्रारम्भ और नामदेव की हिन्दी कविता, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1972 ई., पृष्ठ – 222

कराती हैं उन्हें क्रमशः वाचक, लक्षक और व्यंजक कहा जाता है। ये शब्द जिन अर्थों का बोध कराते हैं उन्हें क्रमशः वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ कहा जाता है।"[257] मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में शब्द शक्तियों के प्रयोग का आदर्श रूप मिलता है। जो नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं को संप्रेषणीय बनाती है। उदाहरणार्थ नामदेव की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त शब्द शक्तियों के एक-एक उदाहरण प्रस्तुत हैं – अभिधा : *"सफल जनमु मोकउ गुरु कीना। दुख बिसारि सुख अंतरि लीना॥"*[258] लक्षणा : *"राग बिन रागो सिव बिन सीवो। राम नाम बिन कहीं न जीवो॥"*[259] व्यंजना : *"जौ राजु देहि त कवन बडाई। जौ भीख मंगावहि त किआ घटि जाई॥"*[260]

अन्य मराठी संतों गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में भी शब्द शक्तियों के प्रयोग अर्थ को बोधगम्य बनाने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

**शब्द गुण**

काव्य में शब्द गुण रस का धर्म है। शब्द गुण तीन हैं – माधुर्य, ओज और प्रसाद। जहाँ काव्य से सहृदय का अन्तःकरण आर्द्र अथवा द्रवित हो जाता है वहाँ माधुर्य गुण होता है। जिस काव्य से सहृदय के चित्त में तेज और स्फूर्ति का संचार हो वहाँ ओज गुण होता है। जहाँ कविता का अर्थ और भाव सुनते ही समझ में आ जाए और सहृदय के चित्त में व्याप्त हो जाए वहाँ प्रसाद गुण होता है। रसास्वाद के साथ शब्द गुण का बोध मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में आसानी से मिलता है। शब्द गुणों का प्रयोग वास्तव में काव्य ध्वनि में आरोह-अवरोह के उत्पन्न प्रभाव से सहृदय श्रोता को आकृष्ट करता है। उदाहरणार्थ नामदेव की दक्खिनी रचनाओं में प्रयुक्त शब्द गुणों से आस्वाद प्राप्त किया जा सकता

257. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, पहली आवृत्ति – 2013 ई., पृष्ठ – 337
258. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 248
259. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 41
260. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, वही, पृष्ठ – 243

हैं – माधुर्य : *"कामी पुरखा कामिनी प्यारी । ऐसे नामा प्रीत मुरारी ॥"*[261] ओज : *"सब गोविन्द है सब गोविन्द है गोविन्द बिन नहीं कोई ।"*[262] प्रसाद : *"नाना वर्ण गवा उनका एक वर्ण दूध, तुम कहाँ के बह्मन हम कहाँ के सूद ।"*[263]

इस संदर्भ में हम देखते हैं कि अन्य मराठी संतों गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं में भी शब्द गुणों के सटीक प्रयोग रसास्वाद में वृद्धि कर देते हैं।

इस अध्याय में शिल्प विधान के इस अध्ययन से 'मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ : शिल्प' के संदर्भ में कई आधारभूत जानकारियाँ हमें प्राप्त होती हैं। हम संत नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं को अब और सार्थक ढंग से समझ पाने में समर्थ हुए हैं। कह सकते हैं कि रचनात्मक भावबोध और अवबोध को शिल्पकर्म पर परखने के लिए रचनाओं के शिल्प विधान का अध्ययन आवश्यक है।

**********

261. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, वही, पृष्ठ – 44
262. वही, पृष्ठ – 42
263. वही, पृष्ठ – 18

# निष्कर्ष

यह शोध दक्खिनी भाषा-साहित्य के प्रादुर्भाव की बहसों को जानने और उनका विश्लेषण करने के साथ उसके आधार पर मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं का मूल्यांकन करता है। नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की दक्खिनी रचनाओं को केन्द्र में रख कर किए गए इस मूल्यांकन से हमें दक्खिनी साहित्य की भाषिक प्रवृत्तियों और वस्तुगत संदर्भों का पता चलता है। दक्खिनी का सीधा आशय 'दक्खिन' में बोली जाने वाली उस भाषा से है जो मुस्लिम शासन के दक्षिण भारत में विस्तार के साथ पनप रही थी। हिन्दुस्तानी भाषा के विकास में यह भाषा की एक ऐसी पुरानी कड़ी है, जिसने उत्तर और दक्षिण भारत को एक सूत्र में बांध रखा था। दक्खिनी में 13वीं शताब्दी से साहित्य रचना का आरंभ हो जाता है जबकि इसकी समानधर्मा 'खड़ीबोली' अभी भाषा के रूप में विकसित होने की ओर अग्रसर हो रही थी। दक्षिण भारत में मुस्लिम शासन के प्रभाव स्वरूप हम देखते हैं कि सूफ़ी संतों से लेकर दक्खिन के राजदरबारों तक इसका रचनात्मक और व्यावहारिक रूप से इस्तेमाल स्वीकार्य हो गया था। दक्खिनी तत्कालीन जन समुदाय में बोलचाल की भाषा के तौर पर अपना गहरा प्रभाव रखती थी, जिस कारण अपनी बात कहने के लिए मराठी संतों को मातृभाषा मराठी के अतिरिक्त इसमें भी रचनात्मक सरोकारों की तलाश करनी पड़ी। हम जानते हैं कि उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर भारत का स्थाई संबंध धार्मिक-यात्रा करने तक ही सीमित नहीं था बल्कि दोनों भू-भागों के लोग राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से एक दूसरे के प्रति सम्बद्ध होने के कारण भारत की साझी सांस्कृतिक गतिविधियों का सदैव हिस्सा बन गए थे। ऐसे में एक बड़ा सवाल यह उठता है कि दक्खिनी भाषा-साहित्य के सरोकारों की दिशा क्या थी ? इस स्थिति में हम सूफ़ी संतों के साहित्यिक अवदान तक ही सीमित न हो कर दक्खिन के मुस्लिम राजदरबारों में राजभाषा के रूप में स्थापित दक्खिनी के प्रभाव की ओर भी उन्मुख हो जाते हैं, जिसके जन सरोकारों से जुड़े होने के कारण हम मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में मध्यकालीन

साहित्य पर केन्द्रित वास्तविक पहलुओं को जान पाते हैं। दक्खिनी को तत्कालीन रचनाकारों ने कई नामों से संबोधित किया है इसका कारण यह है कि अपनी भाषिक संरचना में यह आरंभिक काल से ही उत्तरोत्तर विकास करती आ रही थी। जिसमें मराठी संतों की दक्खिनी रचनाएँ उसके साहित्य का अगला चरण थी।

इस्लाम के भारत आगमन के बाद हिन्दुस्तानी भाषा-साहित्य पर पड़े भाषिक और वैचारिक प्रभावों को दक्खिनी अपने में समाहित किए हुए है। जिसमें हिन्दू-मुस्लिम साझा संस्कृति की झलक मिलती है। दक्खिनी बोली में रचित साहित्य की मूल प्रवृत्ति यूँ तो धार्मिक है लेकिन उसका स्वरूप एकेश्वरवाद या निर्गुणवाद की प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख है। शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा इसमें श्रमजीवी संत समाज द्वारा लोक का ज्ञानबोध अधिक होता है। सूफ़ी संतों ने अपने जीवन व्यवसाय के प्रतीकों का लोकशिल्प में प्रयोग के साथ इन रचनाओं की भाषा का माध्यम बनाया है। ये बातें दक्खिनी के अध्ययन की मूल विशेषताओं की ओर संकेत करती हैं।

दक्खिनी को कई मुस्लिम शासकों ने स्थानीय जनता की आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए अपने दरबारों की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया था। वहीं आज हम देखते हैं कि 'राष्ट्रभाषा' या 'राजभाषा' के रूप में स्वीकार्य भाषाओं के लिए भी भारत की जन आकांक्षाओं पर सरकारी तंत्र खरा नहीं उतरता। इस तरह आधुनिक संदर्भ में दक्खिनी की तत्कालीन स्थिति समृद्ध थी। वह भाषा-लिपि के सवालों पर रचनाकार की अभिव्यक्ति को मूल पहचान का आधार बनाती है। उस मध्यकालीन दौर में दक्खिनी अपने काल संदर्भों के साथ सम्बद्ध थी, यह दक्खिनी रचनाओं के काल-विभाजन से भी स्पष्ट होता है। हिन्दी की बोलियों में रचे साहित्य की प्राणधारा आज उसके विमर्शों के केंद्र में है। दक्खिनी के अध्ययन से हिन्दी भाषा-साहित्य के आरंभिक उदाहरणों की पुष्टि होती है। आख़िर किस प्रकार एक बोली में रचित साहित्य मुख्यधारा का आवश्यक अंग होता है यह हम दक्खिनी के रूप में देख सकते हैं।

दक्खिनी के रूप में जिस भाषा-साहित्य का अध्ययन इस शोध प्रबंध में है उसे दक्खिनी कहने का आग्रह भी इसमें है। जिसको इस शोध में हिन्दी-उर्दू भाषा-साहित्य के आरंभिक आधार के रूप में देखने की कोशिश की ओर संकेत किया गया है। दक्खिनी रचनाओं की लिपि के स्तर पर मुस्लिम सूफ़ी संतों और मराठी संतों में जो अन्तर दिखाई देता है उसे हिन्दी-उर्दू के संबंध में भी रेखांकित किया गया है। क्रमशः ये दोनों भाषाएँ देवनागरी और अरबी-फ़ारसी लिपि में एक ही तरह के भाषिक विन्यास को अपनाती है। इस शोध के अध्ययन के केन्द्र में क्योंकि मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं को प्रमुखता से रखा गया है इसलिए इस संदर्भ में यह कहना उचित है कि इन मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में अंतर्वस्तु के स्तर पर साझापन है, भले शिल्प और शब्दावली के रूप भिन्नता के फलस्वरूप दक्खिनी का विकास-क्रम इनकी रचनाओं में लक्षित होता हो।

दक्खिनी में रचित मराठी संतों की रचनाएँ तत्कालीन साहित्यिक प्रतिमानों के सापेक्ष घटित होते प्रभावों की देन हैं। हम नामदेव, गोंदा, एकनाथ और तुकाराम की जिन दक्खिनी रचनाओं पर विचार करते हैं वे अधिकांश रचनाएँ धार्मिक-आध्यात्मिक मध्यकालीन प्रवृत्तियों के साथ ईश्वर विषयक हैं। जो तत्कालीन समाज में चले आ रहे भक्ति-आंदोलन से सरोकार रखती हैं। किन्तु फिर भी इनकी दक्खिनी रचनाओं में धार्मिक बाह्याडंबर और अंधविश्वास का अस्वीकार मिलता है। सामाजिक जागरूकता के स्तर पर भी ये रचनाएँ अमानवीय भावनाओं का विरोध करती हैं। जिस कारण मुस्लिम सूफ़ी संतों की तरह मराठी संतों ने भी अपनी रचनाओं में लोक जागृति के मार्ग पर अग्रसर होने की बात कही है। मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में लोकजागरण की जो देसी आधुनिकता दिखाई देती है वह दक्खिनी साहित्य को प्रबल बनाती है। नामदेव जैसे संतों की वाणी का प्रभाव तो बाद के संतों पर भी लक्षित होता है। निर्गुण-सगुण की जिन बहसों से भक्तिकाल का साहित्य भरा पड़ा है उसका हस्पक्षेप मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में भी मिलता है। अगर दक्खिनी साहित्य का अध्ययन हिन्दी साहित्य के अंतर्गत

किया जाए तो नामदेव आदि को निर्गुण संत कवियों की पहली पंक्ति में रखा जाएगा। आख़िर निर्गुणवाद का प्रभाव संत साहित्य के केन्द्र में क्यों है ? इसका कारण इस्लाम के प्रभाव में आने से भक्तिधर्म का एकेश्वरवाद से जुड़ जाना, उसी प्रभाव में बहुदेववाद का खण्डन और इस्लाम में मूर्ति पूजा का नहीं होना इत्यादि को नहीं मानना चाहिए बल्कि वर्णाश्रम ब्राह्मणधर्म और सामाजिक भेदभाव के कारण जिन लोगों को मन्दिर तक में प्रवेश नहीं करने दिया जाता था उसी समाज से निकल कर आए इन निर्गुण संतों ने भक्तिमार्ग की एक नई शाखा का ही प्रचलन कर दिया। जिसमें ईश्वर का स्वरूप निराकार निरंजन का है, जो घट-घट में व्याप्त है उस निर्गुण को इस अंतर घट में भी पाया जा सकता है। उसके लिए मन्दिर-मस्जिद या तीर्थव्रत इत्यादि करने की क्या आवश्यकता है ? बहरहाल, मराठी संतों ने मानवीय अनुभवों को केन्द्र में रखते हुए अपनी वाणी का विधान किया है जो वर्तमान समाज के साथ आने वाले बेहतर कल की ओर एक बुनियादी क़दम है।

दक्खिनी रचनाओं के शिल्प संदर्भ के अंतर्गत हम जिस वाणी विधान को मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं में देखते हैं वह इस शोध प्रबंध में भी लक्षित हुआ है। इन संतों की काव्य-भाषा से लेकर काव्य-सौंदर्य के कारकों तक में दक्खिनी साहित्य के विकसित होते शिल्प की परख मिलती है। मराठी संतों की दक्खिनी रचनाओं के शिल्प अध्ययन में काव्यशास्त्रीय बाधा है लेकिन जिस लोक अनुभूति और शैली में इनकी अभिव्यक्ति घटित हुई है वह काव्यशास्त्र के समक्ष एकदम प्रतिकूल नहीं है।

**********

# ग्रंथ-सूची

## आधार ग्रंथ


1. परमानंद पांचाल ( चयन एवं संपादन ), दक्खिनी हिन्दी काव्य संचयन, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली – 110001, प्रथम संस्करण – 2008 ई.
2. राहुल सांकृत्यायन, दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पुनर्मुद्रण संस्करण – 2014 ई.
3. विनयमोहन शर्मा, हिन्दी को मराठी संतों की देन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, प्रथम संस्करण – 1957 ई.
4. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का पद्य और गद्य, हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद, प्रथम आवृत्ति संस्करण – 1954 ई.


## सहायक ग्रंथ


1. अब्दुल क़ादिर सरवरी ( संपादक ), सनअती, क़िस्सा-ए-बेनज़ीर, दखनी मख़्तुतात, हैदराबाद, संस्करण – 1657 हिज़री
2. अब्दुल मजीद तथा सालार जंग ( संपादक ), नुस्रती, अलीनामा, दक्खिनी पब्लिशिंग कमेटी, हैदराबाद, संस्करण – 1956 ई.
3. अब्दुल हक़, उर्दू की इब्तदाई नशोनुमा में सूफ़ियाएँ, अंजूमन तरक़्क़ी-ए-उर्दू, कराची, पाकिस्तान, संस्करण – 1953 ई.

4. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, पहली आवृत्ति – 2013 ई.
5. आले अहमद सुरूर, अलीगढ़ तारीख़ अदब उर्दू ( पहली जिल्द : 1200 से 1900 ई. तक ), शोबा-ए-उर्दू, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़, संस्करण – 1962 ई.
6. इक़बाल अहमद, दक्खिनी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण – 1986 ई.
7. कृ. गो. वानखड़े गुरुजी, संत नामदेव तथा उनका हिन्दी साहित्य, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, संस्करण – 1970 ई.
8. कृपाशंकर सिंह, इतिहास का सच और हिन्दी-उर्दू तथा दक्खिनी-हिन्दी, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2011 ई.
9. गणेश प्रसाद द्विवेदी ( संपादक ), हिन्दी संतकाव्य-संग्रह, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण – 1974 ई.
10. गुलशने इब्राहीमी, तारीख़ फ़रिश्ता, ब्रिग्स का अंग्रेजी अनुवाद जिल्द - 3, संस्करण – 1892 ई.
11. गोपेश्वर सिंह ( संपादक ), भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार, भारतीय प्रकाशन संस्थान, संस्करण – 2002 ई.
12. गोविन्द रजनीश ( संपादन ), नामदेव रचनावली, अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली, पेपरबैक संस्करण – 2006 ई.
13. चन्द्रा सदायत और लालचंद राम ( चयन एवं संपादन ), निर्भय निर्गुण ( संत काव्य संग्रह ), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, प्रथम संस्करण – 2009 ई.
14. ताका हाशि अकिरा, दक्खिनी हिन्दी का भाषा विश्लेषण, संभावना प्रकाशन, हापुड़, संस्करण – 1983 ई.

15. दशरथराज असनानी, दक्खिनी हिन्दी का प्रेमगाथा काव्य, सेतु प्रकाशन, झाँसी, संस्करण – 1969 ई.
16. दशरथराज असनानी, दक्खिनी साहित्य का इतिहास, अपाला प्रकाशन, आगरा, प्रथम संस्करण – 1972 ई.
17. देवीसिंग व्यंकटसिंग चौहान ( संपादक ), इब्ने निशाती, फूलबन, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणे, प्रथम संस्करण – 1966 ई.
18. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, संस्करण – 1949 ई.
19. धीरेन्द्र वर्मा ( प्रधान संपादक ), हिन्दी साहित्य कोश ( भाग – एक ), पारिभाषिक शब्दावली, वाराणसी ज्ञानमण्डल लिमिटेड, संस्करण – 1963 ई.
20. नसीम अब्बासी ( व्याख्याता ), दीवान-ए-ग़ालिब, ग़ालिब अकेडमी, नई दिल्ली, संस्करण – 2014 ई.
21. नसीरुद्दीन हाशमी, दकन में उर्दू, नसीम बुक डिपो, लखनऊ, संस्करण – 1963 ई.
22. नसीरुद्दीन हाशमी, योरोप में दक्खिनी मख़्तुतात, शम्सुल मुताबव उस्मान गंज, हैदराबाद, संस्करण – 1932 ई.
23. ना. वि. सप्रे ( अनुवाद ), तुकाराम गाथा ( संतश्रेष्ठ तुकाराम के चुने हुए अभंगों का हिन्दी भावानुवाद ), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण – 2011 ई.
24. नूर नबी अब्बासी ( अनुवाद ), भारत : अल-बिरूनी, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, आठवीं आवृत्ति – 2013 ई.
25. नेमिचन्द्र जैन ( संपादक ), मुक्तिबोध रचनावली ( खण्ड - 6 ), राजकमल प्रकाशन, तीसरी आवृत्ति संस्करण – 2011 ई.

26. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी : विकास और इतिहास, अलंकार प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 1977 ई.

27. परमानंद पांचाल, दक्खिनी हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली, जयश्री प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण – 1986 ई.

28. परशुराम चतुर्वेदी ( संपादक ), संत काव्य, क़िताब महल, इलाहाबाद, संस्करण – 1956 ई.

29. प्रभाकर माचवे, संत नामदेव : परिचय एवं कविताएँ, हिन्द पॉकेट बुक्स, संस्करण – 2010 ई.

30. बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण – 2016 ई.

31. बाबूराम सक्सेना, दक्खिनी हिन्दी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, संस्करण – 1952 ई.

32. भालचन्द्र नेमाडे, तुकाराम ( भारतीय साहित्य के निर्माता ), हिन्दी अनुवाद – चंद्रकांत पाटील, साहित्य अकादेमी, पुनर्मुद्रण – 2016 ई.

33. भालचन्द्र राव तेलंग, हिन्दुई बनाम दक्खिनी ( भाषिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन ), पद्माकर अनुसंधान शाला ( प्रकाशक ), महाराष्ट्र, प्रथम संस्करण – 1975 ई.

34. मसूद हुसैन ख़ाँ ( संपादक ), इब्राहीमनामा, शोबाए-ए-उर्दू, उस्मानिया यूनिवर्सिटी, हैदराबाद, संस्करण – 1969 ई.

35. माता प्रसाद गुप्त ( संपादक ), क़ुतुबशतक और उसकी हिन्दुई, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, संस्करण – 1967

36. मुहीउद्दीन क़ादरी ज़ोर, दकनी अदब की तारीख़, बुक इंपोरियम, उर्दू बाज़ार, दिल्ली, संस्करण – 1958 ई.

37. रहमत उल्लाह, दक्खिनी हिन्दी और उसके प्रेमाख्यान, अनुभव प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण – 1982 ई.

38. रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि ( पहला भाग ), लोकभारती प्रकाशन, आठवाँ संस्करण – 2009 ई.

39. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण – 2010 ई.

40. रामधारी सिंह 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, पुनर्मुद्रण संस्करण – 2012 ई.

41. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दुई साहित्य का विकास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, संस्करण – 1953 ई.

42. विद्यासागर तथा सैयदा जाफ़र ( संपादन ), शाह तुराब, मनसमझावन, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्रथम संस्करण – 1968 ई.

43. विमला वाघ्रे तथा नसीरुद्दीन हाशमी ( संपादक ), क़ुतुब मुश्तरी, दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद, प्रथम संस्करण – 1954 ई.

44. वी. पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर, दक्खिनी हिन्दी का सूफ़ी साहित्य, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण – 1988 ई.

45. वी. पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर, दक्खिनी हिन्दी भाषा और साहित्य : विकास की दिशाएँ, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण – 2011 ई.

46. शं. के. आडकर, हिन्दी निर्गुण-काव्य का प्रारम्भ और नामदेव की हिन्दी कविता, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1972 ई.

47. शंकरराव देव, संत तुकाराम : संक्षिप्त जीवनी तथा वाणी, प्रकाशक – राजस्थान खादी संघ, जयपुर, संस्करण – 1958 ई.

48. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी का उद्भव और विकास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संस्करण – 1954 ई.

49. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, दक्षिण प्रकाशन, हैदराबाद, संस्करण – 1972 ई.

50. श्रीराम शर्मा तथा सैयद मुबारिजउद्दीन 'रफ़अत' ( संपादक ), मुल्ला वजही, सबरस, दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद, संस्करण – 1955 ई.
51. सत्यदेव चौधरी, भारतीय काव्यशास्त्र, अलंकार प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2007 ई.
52. हक़ीम सैयद शम्सुल्लाह क़ादरी, उर्दू-ए-क़दीम, कराची ( पाकिस्तान ), संस्करण – 1929 ई.
53. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, संस्करण – 2012 ई.
54. हरदेव बाहरी, हिन्दी : उद्भव, विकास और रूप, क़िताब महल प्रकाशन, संस्करण – 2005 ई.
55. हरि रामचन्द्र दिवेकर, संत तुकाराम, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, संस्करण – 1937 ई.
56. हरिनारायण आपटे ( संपादक ), महर्षि वेद व्यास, वायु पुराणम्, आनंदाश्रम संस्था, संस्करण – 1927 ई.
57. हाशमबेग मिर्ज़ा, दक्खिनी हिन्दी साहित्यकार मुल्ला वहजी, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण – 2011 ई.

**पत्रिका आलेख**

1. कृपाशंकर सिंह, दक्खिनी हिन्दी ( हिन्दी के कितने अवतार ), नन्द किशोर पाण्डेय ( प्रधान संपादक ), महेन्द्र सिंह राणा ( संपादक ), गवेषणा, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, अंक – 106/2016, जनवरी-जून : 2016
2. वीर भारत तलवार, महाराष्ट्रीय नवजागरण में निरंतरता, अखिलेश ( संपादक ), तद्भव, वर्ष – 1, अंक – 1, अक्तूबर – 2012 ई. ( पत्रिका का 26वाँ अंक )
3. सुरेश सलिल, 'बुलबुले-बाग़े-वफ़ा हूँ मैं वली' – दकन के महान शाइर 'वली की शाइरी', नया ज्ञानोदय, अंक – 177, नवम्बर – 2017 ई.

## इंटरनेट वेबसाइट पोर्टल

1. 08 July, 2018 : https://www.rekhta.org/couplets/rekhte-ke-tumhiin-ustaad-nahiin-ho-gaalib-mirza-ghalib-couplets?lang=hi

**********